

जिनके प्रताप-प्रभाव में उच्च पद प्राप्त मनुष्यों के र्थावने की शक्ति थी इसी प्रताप द्वारा असाधारण विचारशालि विद्वान राजा महाराजा जिनकी ओर झुकने थे इननाही नहीं परंतु वे उनके गुण-गुण की लातिका की सहक से प्रसन्न हो मुक्तकंठ द्वारा अश्लाघा-प्रशंसा करने थे ऐसे यतिश्रमोंमें प्रधान श्रीलालजी महाराज को मैं श्रुतः करके पूर्वक नमस्कार करना हूं ॥५॥

दम्भोजिभूतं निरभिमानिनमात्मलक्ष्यं
कंदर्पमर्पदशनोत्सन्नने समर्थम् ।
शांतं सदैव कृष्णावकुलालयं त
श्रीलालजिदृगणिवरं प्रणमामि भक्त्या ॥६॥

भाचार्यः—दम्भ-मिथ्याहं पर जिनहें लेशमात्र भी पसंद न था, आचार्य पदप्राप्त एवम् प्रतिष्ठाप्राप्त सरदारों के पूजनीय होने भी जिनहें अभिमान छुआ भी न था परंतु भिर्फ आत्माही की ओर जिनका लक्ष्य था, कंदर्प-कामदेवरूपी विषागी सर्प की डाढ़ें उग्या-टने में जो जिनयी हुए थे, जिनके चहुं ओर शानि स्थापित थी, दया के नां जो सागर थे उन आचार्य शिरोमणि श्रीलालजी महाराज को मैं आंतरिक भक्ति से नमस्कार करना हूं ॥६॥

पापाणतुल्यहृदया अपिकेचनाया
ताः स्वधर्मपदवी कुशलेन येन ।

प्रतापसौभाग्य-वर्णनाष्टकम् ।

वसन्ततिलका वृत्तम् ।

सद्यस्त्वमेव पृथिवीप्रवरप्रदीपो
हर्तान्धकारपटलस्य हृदि स्थितस्य ॥
सन्ध्येऽपरः प्रकटितस्तरणिर्नवीनो ।
धृत्वा तनुं शुभतरां चित्तिपादचारी ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मुनिवर ! तथिंकर केवली प्रभृतिकी अनुपस्थितिमे वर्तमान समय में 'जैन समाजके हृदयके तमको नाश करनेवाले आप स्वतः ही पृथ्वी के श्रेष्ठ सूर्य (दीपक) हैं । मेरी मान्यता है कि सानुषिक देह धारण कर, आप पृथ्वी पर पादविहारी विलक्षण नवीन सूर्य प्रकट हुए हैं । आकाशमें भ्रमण करनेवाला एक मूर्त्य और पृथ्वी पर विचरने वाले आप दूसरे सूर्य हैं ॥ १ ॥

सूर्योदयस्य वैशिष्ट्यम् ।

बाह्यां स्तमस्ततिमलं प्रतिहन्ति भानु
नाभ्यन्तरां हृदयभूमिनतानितान्तम् ॥
त्वं तु प्रबोधकजिनोक्तवचोवितानै
र्जाड्यं द्वय हरमि भूमिरवे जनानाम् ॥ २ ॥

विजय लक्ष्मीः

संघाटके मुनिषु सन्सु महत्सु चान्ये
 प्वाचार्यपूज्यपदवीपदमाश्रिता ते ॥
 मन्ये प्रतापतपनं ह्युदित तवैव
 द्रष्ट्वा प्रसचिमभजत्त्वयि सा जयश्रीः ॥ ४ ॥

भावार्थः—स्वर्गीय, पूज्य श्री — चौधमलजी महाराज के अवसान समय पर आचार्य और पूज्य पदवी का प्रश्न उपस्थित हुआ उस समय आपकी सम्प्रदाय में आपसे अधिक वयोवृद्ध और संयम में बड़े मुनिवर विद्यमान थे तोभी आचार्य पूज्य पदवी आपके चरणों को ही वरी, इसका कारण मुझे तो यह प्रतीत होता है कि आपका प्रताप-सूर्य प्रकट होगया था उसे देखकर ही विजय लक्ष्मी आप पर मोहित होगई ॥ ४ ॥

साम्राज्यतारुण्यप्रदर्शनम् ।

वैज्ञानिकाः पदविभूषितपण्डिताश्च
 नव्याः पुरातनजनाः क्षितिपा महान्तः ॥
 सन्मानयन्ति दृढभक्तिपुरःसरं त्वां
 मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्ते ॥ ५ ॥

विजय लक्ष्मीः

संघाटके मुनिषु सन्सु महत्सु चान्ये
 प्वाचार्यपूज्यपदवीपदमाभिता ते ॥
 मन्ये प्रतापतपनं ह्युदित तवैव
 द्रष्ट्वा प्रसच्चिमभजत्त्वयि सा जयश्रीः ॥ ४ ॥

भावार्थः—स्वर्गीय, पूज्य श्री — चौथमलजी महाराज के अवसान समय पर आचार्य और पूज्य पदवी का प्रभ उपस्थित हुआ उस समय आपकी सम्प्रदाय में आपसे अधिक वयोवृद्ध और संयम में बड़े मुनिवर विद्यमान थे तोभी आचार्य पूज्य पदवी आपके चरण को ही वरी, इसका कारण मुझे तो यह प्रतीत होता है कि आपका प्रताप-सूर्य प्रकट होगया था उसे देखकर ही मैं आप पर मोहित होगई ॥ ४ ॥

साम्राज्यतारुण्यप्रदर्शनम् ।

वैज्ञानिकाः पदविभूषितपण्डिताश्च
 नव्याः पुरातनजनाः क्षितिपा महान्तः ॥
 सन्मानयन्ति दृढभक्तिपुरःसरं त्वां
 मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्ते ॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

भावाये:—आपके पतापसी सामाजिक मण्डली तो यह भी कि हम भूमि-कटियावाली भूमि में जहां २ आपने पदार्पण किया हम प्राम में आपने दीक्षा में और हममें बड़े एवम विज्ञान मणि विराजमान थे, परन्तु कोई व्याख्यान न देने भक्ति आपके सामान्य एक ही सभा में सब साधु, भावक और अन्य मतावलम्बी लोग आपके व्याख्यान सुनने को वसुक्त रहते और आपके पास में ही व्याख्यान दिलाते थे और किसी मुनिके दिलमें लेशमात्र भी यह विचार नहीं आता था कि हमारे भक्त हमसे आपको अधिक मान क्यों देते हैं ? यह भी क्षितिविहारी सुमूर्त्य रूप आपके मव्याहन काल की महिमा ही है ॥ ७ ॥

येनैकदापि तव वाक्श्रवणीकृता वा

दृष्टं सकृच्च सुभव्यमुखारविन्दम् ॥

आजीवनं मनसि तस्य छविस्त्वदीया

लम्बा विभाति महिम्प तवैव भूतेः ॥ ८ ॥

स्थले स्थले रत्नमिदं महार्घम् ॥

प्राप्तुं न योग्यः किम् मर्त्यलोकः
 नर्मस्थानरक्तनाभ्य जाता ॥
 क्लेशः शपथोऽरुनिकाग्णं किं
 कस्माद्गन्तं स्वर्गगुहां निहाय ! ॥ ७ ॥

भावार्थः—क्या उस जवाहिर के रहने के लिये यह मृत्युलोक-
 मनुष्य लोक उचित न था ? या स्वर्गलोक में उसकी विशेष आय-
 ०यकता होने में कोई उसे वहां ले गया ? या वर्तमान प्रचलित
 सांप्रदायिक क्लेश के कारण यहां रहने में उसे अरुणि हुई ? कि
 लिये यह इस पृथ्वी पर कहीं न रहते स्वर्गलोक में चला
 गया ? ॥७॥

हृतं न केनापि वृथाऽत्र शोधः
 प्राप्तुं न शक्यं पृथिवीतलेऽस्मिन् ॥
 गतं स्वयं तत्सलु दिव्यलोकं
 प्रयोजनं किं तदहं न जाने ॥८॥

भावार्थः—हे मानवो ! तुम्हारा वह अमूल्य रत्न इस पृथ्वी
 पर किसीने नहीं चुराया, इसलिये उसे ढूंढना वृथा-निष्फल है.
 इस पृथ्वी की समभूमि पर चाहे जितनी तलाश करो तोभी वह
 कहीं न मिलेगा, वह स्वतः दिव्यलोक-स्वर्ग की ओर प्रयाण कर
 गया है । “किस लिये” यह प्रश्न करोगे तो मैं इस का प्रत्युत्तर देने
 में असमर्थ हूं कारण मैं इस विषय से विशेष विज्ञ नहीं हूं ॥८॥

मृत्यु और रोग शोकादि दुःखोंकी निवृत्ति हो । परन्तु जिस तरह किसी वन में भटकते हुए मनुष्य को राह दिखाकर बाहर निकालने वाले पथदर्शक की आवश्यकता है इसी तरह इस सांसारिक विकट वन से पार हो मोक्ष नगर पहुँचाने के लिये भी किसी सन्मार्गदर्शक पथिक की आवश्यकता है । इसलिये जो महान् पुरुष इसके ज्ञाता हैं उनका अवलंबन करना उनकी आज्ञा मानना और उनका अनुकरण करना सर्वोच्च उपाय है ।

ऐसे महात्मा प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं, अनादि काल से ऐसी विश्व व्यवस्था है कि जब २ इन आत्माओंकी आवश्यकता होती है तब २ उनका प्रादुर्भाव होता है, ये सांसारिक क्षुद्र चासनाएँ त्याग संसार को अपने जन्म समय की स्थिति से अधिक उन्नत स्थिति में लाने का निष्काम वृत्ति से प्रयत्न करते हैं इनका समस्त ऐश्वर्य परोपकारार्थ लगता है । संसार के कल्याणार्थ अपनी आत्मा समर्पण करने भी वे सदा तत्पर रहते हैं और कर्तव्य पालन करने हुए अपने प्राणों की परवाह भी नहीं करते, उनके आचार विचार, नीति रीति, जीवन के छोटे बड़े समस्त काम धर्म की तरह संसार सागर में अपनी जाननाँका जानाने के लिये दिशा दिग्गाने को अटल बने रहते हैं ।

यदि ७ महात्माओं में भी जो रागद्वेष से सर्वथा मुक्त हैं

छानने और चौथे आगमों में तीर्थहरों का अस्तित्व रहता है या चतुर्थी अन्तर्निष्ठी काल में २४ गोर चरती अन्तर्निष्ठी काल में २४ तीर्थहर होते हैं। प्रत्येक काल चक्र में दो चौथीगी होती हैं जेमें अनन्त कालचक्र फिर गण और अनन्त तीर्थहर हो गये हैं।

अने इष भारत क्षेत्र में वर्तमान अन्तर्निष्ठी के चौथे और मे नृपभदेव से महावीर स्वामी तक २४ तीर्थहर हुए। इनमें चरम तीर्थकर श्री महावीर प्रभुका वर्तमान में शासन प्रचलित है।

श्री महावीर स्वामी का जन्म आज से २५२० वर्ष पूर्व (ई० सन् ५६६ वर्ष पूर्व) पूर्वस्थित विहार के कुंडपुर नगर के क्षत्रिय कुल भूपण, ज्ञातवशी, काश्यप गोत्री मिथ्या राजा के यहां हुआ था। उनकी मातों का नाम † त्रिशला देवी था। प्रभुगर्भ में थे तबही से राजा मिथ्या के राज्य विस्तार में तथा धन धान्यादि

* सब तीर्थकर क्षत्रिय कुल में ही जन्म लेते हैं और राज्य वैभव त्याग जगदुद्धार करने के लिये समय लेते हैं। † त्रिशलादेवी सिंध देश के महाराजा चेटक (चेड़ा) की उष्ट्र पुत्री थी। उनका दूसरा नाम प्रियकारिणी था। उनकी बहिन चेलणा मगध देश के अधिपति राजगृही नगरी के महाराजा श्रेणिक जो भारतीय इतिहास में प्रियमार के नाम से प्रसिद्ध हैं उनकी पटरानी थी।

प्राप्त करने को उद्यत हुए । राजमहल में रहने वाले सुकुमार राजपूत सिंह, व्याघ्रादि, हिंसक पशुओं के निवास स्थान भयानक अरण्य में अनेक उपसर्ग सहन करते विचरने लगे । अन्य परिग्रहों का परित्याग करने के साथ २ ही देह ममत्व रूप परिग्रह का भी उन्होंने सर्वथा परित्याग किया था । इसलिये शिशिर ऋतु की कलकलती थंड में उत्तर हिन्द में जहां हिम पड़ता और शीत वायु बहती थी वहां वे वस्त्र रहित समस्त रात्रि ध्यानावस्था में वितरते थे । प्रभु जन कायोत्पन्ने ध्यान में स्थित रहते थे तब कई समय ग्वाल आदि निर्दयता से उन्हें पीटते थे । एक समय एक निर्दय ग्वालने प्रभु के कान में खीले ठोक दिये, दूसरे ग्वाल ने उनके दोनों पैर को मध्य की पोताई में अग्नि जला वम पर क्षीर पकाई, तो भी प्रभु ध्यान से विचलित नहीं हुए । हमके मिवाय चंडकौशिक नाग, शूलपाणियक्ष-मंगम देवता प्रभृति की ओर से प्राप्त परिग्रह तथा अनार्थ देश के विहार समय आनार्थ लोगों के किये उपसर्गों का वर्णन सुनकर-गोमाच हो आता है ।

परंतु लुमा के मागर श्री महावीर स्वामी ऐसे विषम समय को भी कर्मक्षय का कारण समझ आनंदपूर्वक सहन कर लेते थे । उपसर्ग करने वालों का भी श्रेय चाहते अथवा श्रेय मार्ग की ओर उन्हें लगा देते थे । गौंग लाने वनपर नेजेलेग्या छोड़ी तोभी प्रभु

ज्ञान प्राप्त है, पर तब परमात्मा की परीक्षा मान लेनी है। परमात्मा
 के लिये परमार्थ से मन दूर हो, आत्मभाव में स्थित होनी है।
 भाग्य के अनन्त ज्ञान और अनन्त भावार्थ का भान होता है अर्थात्
 ज्ञान के अविनाश। आत्मा विनाशक परमार्थिक दशा में आते समय
 कारण कर राम रूप के संभनने नाना हुआ है और नरामे ही चतु
 र्विधि सन्सार के अनन्त दुःख महान करने पड़ते हैं। उनकी सत्यता
 प्रमाणित होती है, देहादिक परमार्थ में समस्त न रहने से दुःख न
 नहीं सक्त, शायद सुख का अगूढ़ भान तो अपनी आत्मा ही है
 ऐसा उसे साक्षात्कार होता है सब आत्मा समान हैं ऐसा भान होते
 ही सर्वार्थ पर समदृष्टि होती है सब जीवों को अपने समान समझने
 लगता है जिससे वैर विरोध और लोभ क्रोधादि दुर्गुण एवम् तज्जन्म
 दुःखों का सन्दर्भ अभाव हो जाता है। जगत् के छोटे बड़े समस्त प्राणीयों
 के सुख की ही सतन् स्पृहा रहती है, सुख सबको सर्वदा प्रिय होता
 है, ऐसा समझकर वह सबका सुख करने के लिये प्रेरित होता है,
 इससे ज्ञानी पुरुष मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावनाएँ
 भी मोक्ष की कुञ्जी प्राप्त कर लेते हैं, मैं अजर अमर अविनाशी हूँ
 देह के नाश से मेरा नाश नहीं, ऐसा समझ कर वह भय का नाम
 निशान मिटा देता है और मृत्यु से नहीं डरता है। जो मृत्यु से
 नहीं डरता वह क्या नहीं कर सक्त? अर्थात् सब मिद्धियाँ प्राप्त कर
 सक्त है इसलिये ज्ञानको मोक्षकी प्रथम पंक्ति का स्थान दे प्रभु करमाते

आचार्य हुए। वराहमिहिर को इनसे ईर्ष्या हुई और जैन दीक्षा त्याग ज्योतिष विद्या के बल से लोगों में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने वराह संहिता नामक एक ज्योतिष शास्त्र बनाया है ऐसी कथा प्रचलित है कि वे तापस वन अज्ञान तप से तप्त हो मरकर न्यंतर देव हुए और जैनों को उपद्रव प्रसित रखने के लिये महामाटी रोग फैलाया, उस उपसर्ग की शांति के लिये भद्रबाहु स्वामीने 'उपसर्गहर' स्तोत्र रचा और उसके प्रभाव से उपद्रव शांत होगया। इतिहास प्रसिद्ध मौर्य वंशीय * चंद्रगुप्त राजा भद्रबाहु स्वामी का परम भक्त हुआ।

* श्रेष्ठिक राजा का पौत्र उदाई अपुत्र मरने के पश्चात् पाटली पुत्र की मादी एक नाई (हजाम) के नंद नामक पुत्र को प्राप्त हुई, इस राजा का कल्पक नामक मंत्री था। अनुक्रम से नंद वंश के नौ राजा हुए और उसके प्रधान भी कल्पक वंशी हुए।

चारुस्य नामक ब्राह्मणकी सहायता से चंद्रगुप्तने पगिनी किया जिससे वह पाटलीपुत्र का राजा हुआ। नंद के वंशजों ने १५५ वर्ष तक राज्य किया था, चंद्रगुप्त राजा जैनी था उसने धर्म द्वेष के कारण गुप्त गद्गम आदि पुस्तकों में बड़े बड़े उल्लेख किये हैं परन्तु जिन उपसर्गिणी महामातों ने अनेक अलक्ष्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि चंद्रगुप्त गुप्त ही वंशी जैन था।

आ मुने पति न साधमभा में जाते जोर मना कि गजरा ! मेने तो
 केसा नि तराई सा है, फिर उन्होंने मम नीर अप सागी के पास ने देना
 ती चानुर्मास समीप समक उन्होंने बोधा देशा के यश साधुमां
 निगमन करने की गुरुने सा सा मागी, गुरुने भयम्बर समक आया
 देरी, उमी समर तीन दूरे मुनि भी सिंद की गुफा में, सर्प के निज
 में ओर कुण के रड्ड समीप चानुर्मास करने की आजा
 ले निन ने ।

स्थूलीभद्र स्वामी कोशा के घर गए, उन्हें आते देरा कर वेश्या
 ने सोचा ऐसे सुकोनल देहमाले से उनने कठिन महाप्रतों का पालन
 किस रीती से होगा ? मेरा प्रेम अभी उनके दिल से नहीं हटा ।
 स्थूलीभद्र को समीप आते ही वेश्याने विशेष आदर सन्मान दे कदा
 स्वामिन् ! इस दासी पर महन कृपा की जो आजा हो वर सुख से
 फमाइये, निर्मोही निर्मिकारी मुनि बोले, मुझे तुम्हारी चित्रशाला में
 चातुर्मास व्यतीत करना है, वेश्याने चित्रशाला सुपुर्द कर दी । पश्चात्
 स्वादिष्ट भोजन बहिराये फिर उत्तम शृंगार कर उनके सामने आ खड़ी
 हुई । पूर्वप्रेम का स्मरण कर, पूर्व भोगे हुए भोगों को याद कर वह
 वेश्या अत्यन्त हाव भाव दिखाने लगी । परन्तु मुनिराज तो मेरुके समान
 अटल रहे । मनमे लेश मात्र भी विकार उत्पन्न न हुआ; वरन् उस वेश्या
 को भी उपदेश दे श्रायिका बना लिया, चातुर्मास पूर्ण हुआ, वे गुरु
 के पास आये, वहांतक सिंद गुफा वासी आदि तीनों मुनिवर भी

इतना अधिक आहार किया कि वह मरणांतिक कष्ट पाने लगा। उस समय बड़े २ साहूकारों ने उस नवदीक्षित मुनि की औपधोष-चार आदि से उचित वैयावृत्त की। सिर्फ जैन-मुनिका वेष पहिरने से ही अपनी स्थिति में जमीन आसमान जैसा महान् अंतर हुआ देख वह बहुत आनन्दित और आश्चर्यान्वित हुआ और समभाव से वेदना सह मरकर पाटली पुत्र के राजा चद्रगुप्त का पुत्र बिंदुसार, बिंदुसार का पुत्र अशोक और अशोक का पुत्र कुणाल, कुणाल का क्षात्रप्रति नामक पुत्र हुआ ।

क्षाम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति महाराज के समागम से जाति स्मरण होगया उन्होंने श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये और देश देशान्तरों में उपदेशक भेज जैन धर्म की पवित्र भावनाओं का प्रचार किया, अपने राज्य में अमरपट्टहा (ढिंढोरा) बजवाया अन्तर्ग देशों में भी गृहस्थ उपदेशक भेजकर लोग बहिष्ठा धर्म के प्रेमी बनाये:—

एक वक्त आर्य सुहस्तिजी उज्जैन पनारे और भद्रा मेढानी की अधशाला में बसे भद्रा का अग्रंती मुकुमार नामक एक महा तेजस्वी पुत्र था:—वह अपनी म्रियों के साथ नदल में देव सन्त श्रुत भोगमा था । एक समय आचार्य महाराज पाचवे देवलोक के गुरु गुरु विद्या का अधिकार पढ़ रहे थे, वह सुनकर अचरित

इतना अधिक आहार किया कि नठ मरणांतिक कष्ट पाने लगा, उस समय बड़े २ साहूकारों ने उस नवदीक्षित मुनि की औपधोष-चार आदि से उचित वैयावृत्त्य को मिर्फ जैन-मुनिता वेष पहिरने से ही अपनी स्थिति में जमीन आसमान जैसा महान् अंतर हुआ देख वह बहुत आनन्दित और आश्चर्यान्वित हुआ और समभाव में वेदना सह मरकर पाटली पुत्र के राजा चंद्रगुप्त का पुत्र बिंदुसार, बिंदुसार का पुत्र अशोक और अशोक का पुत्र कुणाल, कुणाल का क्षाम्प्रति नामक पुत्र हुआ ।

क्षाम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति महाराज के समागम से जाति स्मरण ज्ञान होगया उन्होंने श्रावक के वारह व्रत अंगीकार किये और देश देशान्तरों में उपदेशक भेज जैन धर्म की पवित्र भावनाओं का प्रचार किया, अपने राज्य में अमरपट्टहा (ढिंढोरा) बजवाया अन्तर्ध देशों में भी गृहस्थ उपदेशक भेजकर लोग अहिंसा धर्म के प्रेमी बनावे;—

एक वक्त आर्य सुहस्तिजी उज्जैन पवारे और भद्रा सेठानी की श्रद्धालुओं में उतरे भद्रा का अवंती सुकुमार नामक एक महा रोजस्वी पुत्र था—वह अपनी स्त्रियों के साथ महल में देव सदृश सुख भोगता था । एक समय आचार्य महाराज पाचवें देवलोफ के गुरुता गुन्म रिमान का अधिकार पढ़ रहे थे, वह सुनकर अवंति

वीरस्वामी १३ स्थंडिल स्वामी १४ जीवनर स्वामी १५ आर्य
समेद स्वामी १६ नंदील स्वामी १७ नागहस्ति स्वामी १८ रेवंत
स्वामी १९ सिंहगणिजी २० थंडिलाचार्य २१ हेमवन स्वामी २२
नागजित स्वामी २३ गोविन्द स्वामी २४ भूतदीन स्वामी २५
छोहगणिजी २६ दुःसहगणिजी और २७ देवार्दिगणिजी क्षमा
श्रमण हुए ।

श्री वीर निर्वाण से ६८० वे वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् ५१० में
समर्थ आठ आचार्यों ने समय सूचकता समझ वर्तमान प्रचलित
अनेक साधन सग्रह करने का योग्य विचार किया । वल्लभीपुर (कठिया-
वाड़ में भावनगर के पास बला स्टेट है) में टाडकृत राजस्थान में
लिखे अनुमार जैनियों की घनी वस्ती थी और राज्य शासन शिलादित्य
के हाथ में था जैन धर्म को विजय ध्वजा फहराने वाले इस प्रसिद्ध
शहर पर वि० सं० ५२५ में पार्थियन, गेट और हूण लोगों ने
हमला किया, जिससे तीस हजार जैन कुटुम्बी वह शहर त्याग भारवाड़
में जा बसे. इस भगामगी दुष्काल के कारण लिखा हुआ पूर्ण शुद्ध
नहीं हुआ जिससे सूत्रों की शृंखला विन्नभिन्न होगई फिर बौद्ध
लोगों ने भी जैनधर्म के प्रतिस्पर्धी व प्रतिपक्षी बन जैन शासन को
समुच्छेद उखाड़ डालने का प्रयत्न किया, ऐसे अनेक कारणों से श्री
भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् विक्रम संवत् आठसौ तक अनेक जैन
विद्वान् हुए तो भी उनकी कृति हाथ नहीं लगती.

बुद्धि तीव्र एवम् निर्मल थी. जैन धर्म पर उनका अप्रतिम प्रेम था एक समय वे ज्ञानजी ऋषि के समीप उपाश्रय में आये उस समय ज्ञानजी ऋषि धर्म शास्त्र संभालने और उन्हें योग्य व्यवस्था से रखने में लगे हुए थे. उनके एक शिष्य ने सूत्र की प्राचीन जर्ण प्रतियां देखकर शाहजी से कहा, “ आर्यक मुंदर हस्ताक्षर इन पुस्तकों का पुनरुद्धार करने में उपयोगी नहीं हो सकते ? शाहजी ने अत्यंत आनंद के साथ सूत्र की जर्ण प्रतियों की प्रति लिपि करने का कार्य स्वीकार दिया (विहम संवत् १५०६ ई० सन् १४५२) अपने लिखे भी उन्होंने सूत्र की प्रतियां लिख लीं मिलते २ बड़े दिनीय सूत्र ज्ञान हो गया उनकी निर्मल और कुशल बुद्धि योग्यता की पवित्र पाशय को समझ गई. उनका मानवपुत्र पुत्र ज्ञान के धर्म भाषित आद्वय धर्म और वर्तमान में चिरगने वाले शास्त्र की श्रद्धा मानी आनमान या साधन दिया, साधुओं को शास्त्र के अन्तर्गत जैन धर्म का गति उलटती दिखाने के लिए उन्हें बुद्धि युक्त ज्ञान और गन्ध का साधन व्यवस्थापन की उत्तम मानस मदिर में प्रवेश भुक्कण हुई। प्रति पक्षी दण्ड शास्त्र के अन्तर्गत ज्ञान, तथा साधन सम्पन्न था जो भी निर्मलता में वे लक्षित व्यवधान — उपदेश देने लगे और गन्ध के अन्तर्गत शास्त्र के अन्तर्गत आदर्श शक्ति के प्रभाव से उनके शास्त्र के अन्तर्गत प्रतिदिन यदने क्षण मिलने २ देशों के

श्रीमंत अमरावत्य श्रावक वृद्धत्वं मंढ्या में उनके अनुयायी हुए, केवल श्रावक ही नहीं परंतु कितने ही यति भी उनके सदुपदेश के अन्तर से शास्त्रानुसार अग्रगण्य वर्ग आराधने तत्पर हुए, लैंकाशान् स्वयम् वृद्ध होने से दीक्षित न हो सकें परंतु भाग्यार्थी आदि ४५ भग्य जीवों को उन्होंने दीक्षा दिला उनकी सहायता से आप जैन शासन सुधारने के आपने इस पवित्र कार्य में महान् विजय प्राप्त की और अल्प समय में ही हिन्दुस्थान के एक छोर से दूसरे छोर तक लाखों जैनी उनके अनुयायी बने, जिस समय यूरोप में वर्म सुधारक मार्टिन लुथर द्वारा और अमेरिका में डेविड रिडिंग ने लिम्बी धर्म को जागृत किया, उसी समय या उसी साल आत्मान् जैन धर्म सुधारक श्रीमान् लीलादास का समय मिलता है ५

लीलादास के उद्देश में ४५ मनुष्य दीक्षित हुए उन्होंने अपने गुरुदास लालदास नाम स्वामी और संन्यासी १५३१.

— About A. D. 1132 the Lanka sect arose and was followed by the ethakayan sect date, which coincide strikingly with the Lutheran and puritan movements in Europe

Heart of Jainism

समय २ पर धर्मगुरु जन्म लेते हैं, होते हैं और जाते हैं परंतु समाज पर पवित्र और स्थिर छाप लगाने का उद्देश्य बहुत कम

ज्ञानजी ऋषि के पश्चात् आज तक गांधी नदीन आचार्यों की गामायली निम्न लिखित हैं.

६२ भाग्यजी ऋषि ६३ रूपजी ऋषि ६४ जीवराजजी ऋषि ६५ तेजराजजी ६६ कुंवरजी स्वामी ६७ हर्ष ऋषिजी ६८ गोधा-
जी स्वामी ६९ परशुरामजी स्वामी ७० लोकपालजी स्वामी ७१
महाराजजी स्वामी ७२ दौलतरामजी स्वामी ७३ लालचंदजी स्वामी
७४ गोविंदरामजी स्वामी ७५ हनुमन्चंदजी स्वामी ७६ शिवलालजी
स्वामी ७७ उदयचंद्रजी स्वामी ७८ चौधमलजी स्वामी ७९ श्री-
लालजी स्वामी (चरित नायक) ८० श्री जवाहिरलालजी स्वामी
(वर्तमान आचार्य) *

ज्ञानजी ऋषि से आजतक ४५० वर्ष का कुछ इतिहास अब वर्णन करते हैं ।

श्री महावीर की बाणी का अवलम्बन ले घमोंद्वार का श्रीमान् लोकाशाह ने जो शुद्ध मार्ग प्रवर्त्ताया उस मार्गगामी साधु शास्त्र नियमानुसार संयम पालते, निर्वैय उपदेश देते, निष्परिम हो रहकर मामानुषात्म अप्रतिषिद्ध विहारकर, पवित्र जैन शासन का उद्योग करने थे, भाणाजी अष्टमे साधमखाजी, नरजी अष्टपि तथा जीवराज अष्टिनी प्रभृति ने तारों की सम्पत्ति त्याग दीक्षा ली थी, गन्दाजी तो बादशाह अकबर के मंत्री मंडल में से एक थे, बादशाह की इन्कारी होनेपर भी पाच करोड़की सम्पत्ति त्याग वन्द्योने दीक्षा ली थी ।

प्रायः सौ वर्ष तक तो लोका गन्धीय साधुओं का व्यवहार होकर रहा परन्तु पीछे से उनमें भी धीरे २ आचारशिविलता और अन्धधुन्धी घटने लगी ।

पूर्वजन्त अन्धकार फैलाने वाले बादल फिर चढ़ आये, साधु पंच महाग्रवों को त्याग गठानलम्बी और परिग्रहधारी होने लगे, तथा सायण भासा और सायण प्रिया में पशुन होने लगे, परन्तु उस समय भी कई अवगिहरी और आत्माधी साधु विशुद्ध संयम पालते, कठियावाड़ मारवाड़ पंजाब में विचरते थे और पेशन बादलों के ऊपर ने मुक्त रहे थे, मालवा मारवाड़ आदि में विचरते पृथ्वी हृकमीचंद्रजी महाराज का सम्प्रदाय ऐसे ही आत्माधी साधुओं में से एक के पाठ पर होने से हुआ है ।

लोकशासन के पञ्चांग फिर से जन से मेरा जाना पड़ेगा तब ही राष्ट्र-पत्र के लिए गुजरात में किसी समान महापुरुष के प्राङ्गमन होने ही आवश्यकता हुई उस समय प्राङ्गनिक नियमानुसार धर्मसिंहजी लखजी महि और श्री धर्मदासजी अणुगार एक के पञ्चान एक यो तीन महा व्यक्ति उत्पन्न हुए, उन्होंने अद्भुत पराक्रम दिया लोकशासन के उपदेश का पुनरुद्धार किया, बल्कि जासन सुधारने का जो कार्य उन्होंने अपूर्ण छोड़ा था उसे उस त्रिपुटी में पूर्ण किया, उन्होंने महावीर की आज्ञानुसार अणुगार धर्म की अराधना प्रारंभ की, उनके विशुद्ध ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपके प्रभव से तथा शास्त्रानुकूल और समयानुकूल सदुपदेश से लाखों

❀ एक अंग्रेज वानू मिमीस स्टीवन्सन् कि जो राज कोट में रहती थी अपनी Heart of Jainism (नाम पुस्तक में इस समयका रलेख यों करती हैं ।

Firmly rooted amongst the laiter, they were able once hurricane was past to reappear oncomore and begin to throw out fresh branches ..many from the Lonka scob Joined this reformer and they took the name of Sthanakwasi, whilst then onomies called them Dhundhua Searchols This tillle has grown to be quite an honourable one

विदुष्य उनके भाऊ लोग । उस समय से उन्होंने जैन धानन का प्रभुत्व स्वीकृत किया, तथा वे लौंसा मन्त्र्य यति वर्ग और पंच महाजन धानी साधु ऐसे दो विभागों में जैन श्रेष्ठ पंथ बँट गया। लौंसा मन्त्र्यों तथा अन्य मन्त्र्यों का आवक पंच महाजायसी साधुओं को मानने वाले तथा उनके दिगम्बर छुड़ मार्ग पर चलने वाले छुड़ से साधुगर्भी नाम से सम्बोधित छुड़ सर मार्ग छुड़ गया तथा इसके पर्वतों में एक नये धर्म शास्त्र नहीं बनाये थे बल्कि शास्त्र विद्वत् राजर्षी प्रणाली को एक शास्त्र की खाता दी थे मानने लगे, माय्या की सम्प्रदाय भी इसी मार्ग का अनुसरण करने वाली होने में वे भी साधुगर्भी नाम से पहचाने जाते हैं । यद्यपि सम्प्रदाय के प्रभावशाली गुरुपरम्परा में वे सदैव से सुदृढ़ २ आचार्यों का छुड़ इतिहास अवलोकन करने पर प्रात्यक्षिक नहीं होगा ।

श्रीः धर्मसिद्धजीः — ये मानसवर कहियाराह के रत्ना गोपालों विषय में इनके पिता का नाम जिनदान और माता का नाम शिवराय, लौंसाजन के पञ्चायत स्तम्भितों के निम्न श्रेणी समाचार के अनुसार वे १४ वर्ष की उम्र में धर्मसिद्धजी को वैराग्य प्रवृत्त हुआ और पिता पुत्र दोनों में सीता को विनय द्वारा मुक्त किया सम्पादन कर मान प्रदान करने के विवेक पक्ष वैराग्यमान धर्मसिद्धजी सुनिश्चित सदुद्योग करने लगे, ३३ वर्ष के उमराय पञ्चायत

हों वर्ष बाद वन से प्रथक् हो वनने विक्रम संवत् १६८२ में
 मयमेव दीक्षा ली। अनेक परिपक्व सहन किये और शुद्ध चारित्र्य पाल,
 जैन धर्म दिवा स्वर्ग पधार। मुनि श्री दीनवच्छपिजी तथा अमिच्छपिजी
 प्रभृति वनकी सम्प्रदाय में हैं।

श्रीधर्मदासजी अणुगार—ये अट्ठमदावाज के समीप सरस्वत
 प्राग के निवासी भावसार ज्ञानि के थे। उनके पिता का नाम
 जीवन कान्तिदास था। विक्रम संवत् १७१६ में उन्होंने प्रसन्न वैराग्य
 से दीक्षा ली और धर्मा दिन गोचरी जाते एक कुम्हारिन ने रात्र
 बहराई। वह थोड़ीसी रात्र में गिरी और थोड़ी दूरा में बिगड़ गई।
 यह वृत्तांत इन्होंने धर्मनिहजी से कहा।

इसका उत्तर धर्मनिहजी ने फर्माया कि, जैसे द्वार पिन कोट
 पर गाली नहीं रहता वही तरह प्रायः तुम्हारे शिष्यों के रिना
 कोट प्राग गाली न रहेगा और द्वार दूरा में फैल गई इन्ही तरह
 तुम्हारे शिष्य आरों और धर्म का प्रचार करेंगे। धर्मदासजी के ६६
 शिष्य हुए जिन्होंने देश देशान्तरों में जैनधर्म की अत्यन्त सुकीर्ति फैलाई
 ६६ शिष्यों में से ६८ वां गणना, नामदास, मेरठ और गतावमें निवसते
 और जैनधर्म की प्रजा फैलाने में, निराला मूलबंदगी म्यासी
 गुजरात में रहे उन्होंने गुजरात में मूल कर जैन धर्म का अत्यन्त
 प्रचार किया। मूलबंदजी म्यासी के ७ शिष्य हुए जिनमें तीन शायद
 ही दिवाने वाले हुए, उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं।

१ गुणाधरजी २ पंचांगजी ३ राधाजी ४ इन्द्रजी ५ राधाजी
६ विदुषजी और ७ भूषणजी उनके शिष्यों ने आदिवासी
में १ तीवरी २ गोंदन ३ तमाता ४ गाड़ कंठी कंठी ५
चूना ६ धागना ७ मायना ऐसे ७ मन्त्रों स्थापित किये ।

गुणाधरजी के शिष्य बालजी स्वामी, बालजी स्वामी के शिष्य
दीराजी स्वामी, दीराजी स्वामी के शिष्य कानजी स्वामी और
कानजी स्वामी के शिष्य अजरामरजी स्वामी हुए । ये अजरामरजी
महाप्रतापी और पंडित पुरुष हुए । उनके नाम से वर्तमान में तीवरी
संप्रदाय (सवाड़ा) प्रचलित है ।

श्री दौलतरामजी तथा श्री अजरामरजी—ये दोनों
महात्मा समकालीन थे । दौलतरामजी ने स. १८१४ में और अजरा-
मरजी ने १८१६ में दीक्षा ली थी । श्री दौलतरामजी महाराज पू०
हुक्मीचन्द्रजी महाराज के गुरु के गुरु थे, वे अनि समर्थ विद्वान्
और सूत्र सिद्धान्त के पारगामी थे, मालवा, मारवाड़, मैथिली
और इसी प्रदेश को पावन करते थे, उनके असाधारण ज्ञान
सन्धित्त का प्रशंसा श्री अजरामरजी स्वामी ने सुनी । अजरामरजी
स्वामी का ज्ञान भी बड़ा चढ़ा था तो भी सूत्र ज्ञान में अधिक
उन्नति करने के लिये श्री दौलतरामजी महाराज के पास अभ्यास
करने की उनकी इच्छा हुई । इस पर मै लावड़ी संघ ने एक खाम

मनुष्य के साथ दौलतरामजी महाराज भी सेवा में प्रार्थना पत्र भेजा आचार्य प्रवर श्री दौलतरामजी महाराज उस समय घुंड़ी कोटे विराजते थे। उन्होंने इस विक्षमि को सहर्ष स्वीकृत कर काठियावाड़ की ओर बिहार किया। वह भेजा हुआ मनुष्य भी अहमदाबाद तक पूज्य श्री के साथ ही था परंतु वहां से वह पृथक् हो लॉवड़ी संघ की पूज्य श्री के पधारने की प्रार्थना देने आया। उस समय लॉवड़ी संघ के आनंद का पार न रहा, लॉवड़ी संघने उस मनुष्य को रु० १२५०) वपार में भेंट दिये। पूज्य श्री दौलतरामजी लॉवड़ी पधारें नववश के स्नेह ने उनका अत्यन्त आदर सत्कार किया।

लॉवड़ी संघ की अनुपम शुरुभाति देखकर दौलतरामजी महाराज भी भी मानंदासजी हुए। पंडित श्री अन्नारामजी स्वामी पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज से मूल सिलाव का रहस्य समझने लगे। सम्पत्ति सार के कर्मा पं० मुनि श्री जेठमलजी महाराज इस समय पावनपुत्र विराजते थे वे भी साम्राज्य करने के लिये लॉवड़ी पधारें और वे भी ज्ञान गोष्ठी के अपूर्व आनंद का अनुभव करने लगे। भिन्न २ सम्प्रदाय के साधुओं में परस्पर उन समय किना प्रेमभाव का और साधुओं में ज्ञान विपाना किना तीव्र थी वह इस पर मे स्पष्ट सिद्ध है। पं० श्री० दौलतरामजी महाराज के साथ २ विरामे ही समय नष्ट विचार कर पं० श्री अन्नारामजी महाराजने मूल ज्ञान में अपरिमित अभिरुचि की थी और पूज्य श्री दौलतरामजी

महाराज के आगम में पूज्य श्री लालचन्द्रजी महाराजने जगपुर में एक आनुमीन भी उनके साथ किया था ।

पूज्य श्री हनुमन्तनन्दजी स्वामी—पूज्य शीलचन्द्रजी महाराज के पञ्चानु श्रीलालचन्द्रजी महाराज आचार्य हनु, और उनके पास पर परम प्रतापी पूज्य श्री हनुमन्तनन्दजी महाराज हनु दोष (रायगिह के) प्राप्त के रहने वाले थे जोमनाल गुरुस्थ में उनके गीत गणनाल था. पृंती शहर में सं० १८७६ में मार्गशीर्ष मास में पूज्य श्रीलाल चन्द्रजी स्वामी के पास उन्होंने प्रवल बेराग्य से दीक्षा ली । २१ वर्ष तक उन्होंने बेलें २ तप किया चाहे जितने कष्टक शीत में भी वे सिर्फ एक ही चादर ओढ़ते थे. शिष्य बनाने का उनके सर्वथा त्याग था, हमने सब मिठाई भी खाना त्याग दी थी । सिर्फ तरह द्रव्य रखकर बाकी के सब द्रव्यों का यावज्जीव पर्यंत त्याग किया था वे बिल्कुल कम निद्रा लेते और रात दिन स्वाध्याय और ध्यानादि प्रवृत्ति में ही लीन रहते थे. नित्य २०० नमोस्तुतं गिनते थे. आप समर्थ विद्वान् होते भी निरभिमानी थे. कोई चर्चा करने आता तो अपने आज्ञावर्ती साधु श्रीशिवलालजी महाराज के पास भेज देते, अपने गुरु पूज्य श्री लालचन्द्रजी महाराज शास्त्रानुसार सख्त आचार पालने के लिये बार बार विनय करते रहते परन्तु अपनी विनय अस्वीकृत होने से पृथक् विहरने लगे और तप पादि में वृद्धि करने लगे, इससे गुरुजी उनके अति निंदा

करने लगे, किसीने इनको आहार पानी देना नहीं, उपदेश सुनना नहीं तथा चतरने के लिये स्थान भी नहीं देना ऐसे २ उपदेश देने लगे, क्षमा के सागर श्री हुकमीचंद्रजी महाराज ने दक्ष पर तनिक भी क्षम नहीं दिया वे तो गुरु के गुणानुवाद ही करते और कहते थे कि मेरे तो वे परम उपकारी पुरुष हैं नष्ट भाग्यवान हैं मेरी आत्मा ही भारी कर्मी है । इस तरह वे गुरु प्रशंसा और आत्मनिंदा करने थे तो भी गुरुजी की ओर शोर से वाङ्मय के प्रसार होते ही रहे यां करते २ चार वर्ष बीत गए, परंतु वे गुरु के विरुद्ध कदापि एक शब्द भी न बोले । चार वर्ष बाद गुरु को आप ही आप पश्चात्ताप होने लगा और वे भी निंदा के बदले म्नुनि करने लगे । अंत में व्याख्यान में प्रकट तौर पर कहाने लगे कि हुकमीचंद्रजी तो चौधे ओर के नभूने हैं वे पवित्रात्मा और उत्तम साधु हैं वे अद्भुत क्षमा के भंडार हैं । मैंने चार वर्ष तक उनके अविगुण माने में धुटि न करी परंतु उनके बदले उन्होंने मेरे गुण ग्राम करने में बर्मी नहीं की । भय है ऐसे मत्पुरुष को । सीमान हुकमीचंद्रजी महाराज का गुण समूहस्वर सूर्य स्वर्गः प्रकाशित था, जिनसे लोगों की पहिले से ही वनप्रपूज्य भावित हो थी ही फिर आपाये भी के उद्गारों का अनुमोदन मिलने ही वनकी चराचरुमी दशही दिशाओं में गूँहने लग गई । उन्होंने अपनी सुन्प्रशय में क्रियारतार किया

तब से यह सम्प्रदाय उनके नाम से प्रसिद्ध हुई और पहिचानी जाने लगी । उनके अक्षर मोती के दाने जैसे थे. उनकी हस्तलिखित १६ सूत्रों की प्रतियां इस सम्प्रदाय में अब भी वर्तमान हैं । सं० १६१७ के वैशाख शुद्ध ५ मंगलवार को जानद ग्राम में देहोत्सर्ग कर ये पवित्रात्मा स्वर्ग पधारे ।

श्रीयुत ग्योइट संत्य फरमाते हैं कि, “ काल से भी अविच्छिन्न हो ऐसा कोई प्रतापी और प्रौढ स्मारक मृत्युवाद छोड़ जाना उचित है कि जिससे देह नश्वर होने से नाश होजाय तो भी उस स्मारक के कारण हमेशा जीवित रहे और वही वास्तविक कीर्ति का फल है ऐसे महाराज—महापुरुष विरले ही जन्म लेते हैं ।

पूज्य शिवलालजी स्वामी—श्री हुकमचंद्रजी महाराज के पाट पर शिवलालजी महाराज विराजे उन्होंने सं० १८६१ में दीक्षा ली थी, वे भी महा प्रतापी थे, उन्होंने ३३ वर्ष तक लगातार अखण्ड एकांवर की. वे सिर्फ तपस्वी ही नहीं थे, परंतु पूर्ण विद्वान् भी थे, स्व परमत के ज्ञाता और समर्थ उपदेशक थे उन्होंने भी जैन शासन का अच्छा उद्योग किया और श्री हुकमीचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति बढ़ाई सं० १६३३ पोष शुक्ल ६ के रोज उनका स्वर्गवास हुआ ।

पूज्य श्री उदयसागरजी स्वामी—इन महात्मा का जन्म जोधपुर निवासी ओसवाल गृहस्थ सेठ नथमलजी की पतिव्रत

परायणा भार्या श्री जीवु बाई के सदर से सं० १८७६ के पोर्णमाह में हुआ। सं० १८६१ में इनका ब्याह परमारेखा से किया गया। ब्याह होने के कुछ ही समय पश्चात् उन्हें संसार की अपारता का भान होने बैराग्य स्फुरित हुआ। सब सम्बन्ध परित्याग करने की अभिलाषा जामून हुई परंतु माता पिता कुटुम्बादिको ने दीक्षा लेने की आज्ञा न दी। इसलिये भावक प्रग्न धारण कर साधु का वेष पहन भिक्षाचारी करते प्रामाण्य प्राप्त करने लगे। कुछ समय को देशाटन करने के प्रधान माता पिता की आज्ञा मिलते ही इन्होंने सं० १६७८ के चैत शुक्ल ११ के रोज पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के सुशिष्य हर्षचंदजी महाराज के पास दीक्षा धारण की और गुरु गण से ज्ञान ग्रहण करने लगे। इनकी भारण शक्ति अद्भुत और सुदृढ़ बन आया था। थोड़े ही समय में इन्होंने ज्ञान और चारित्र्य की अभिक ही उत्पन्न की, इनकी उपदेश शैली अनूपाव श्री इसलिये पूज्य भी जहां २ पधारगे वहां २ उनके सुन्न फलज की वाली सुनने के लिये रगनी अन्यमयी हिन्दू मुसलमान प्रभृति अपेक्ष मंत्रणा में आते थे, उनकी गारीहरेक सम्प्रदा अति आकर्षक थी, गौरवर्ण, दीप्त कंठि विमल माल, प्रकाशित बड़े नेत्र, बंद मगान मनोहर पदन और गव्यज्ञान गद अमृत समान निष्ठ भावों। धार्मी से सब मोट सगुह पर सादृसा प्रभाव डालने में पूज्य भी संसार में अटक राखल रिही तक समारे से और सब अज्ञान मुक्त

में थी अपना प्रभाव दिखाया था, कई राजाओं को सदुपदेश दे शिकार और मांस मदिरा छुड़ाई और अहिंसा धर्म की विजय ध्वजा फहराई थी-।

पूज्य श्री के आचार विचारः— पूज्य श्री के हृदय की प्रतिच्छाया वर्तमान के उनके साधु हैं 'क्षिप्रैर्वनर्था बहुली भवन्ति' मोह, या प्यार में जो लेश मात्र स्वतंत्रता दीजाती है वही स्वतंत्रता फिर स्वच्छंदता के स्वरूप में परिणित होजाती है और जिसका फल भयंकर असह्य और अक्षम्यदोष उत्पन्न करता है. ये कारण प्रत्यक्ष रखकर किसीभी शिष्य को स्वच्छंदी बनने न देते.

भिन्न २ प्रकृति के साधु एकत्रित हो उस सम्प्रदाय को शुद्ध समय की सीमा में रखना सरल कार्य नहीं है । अनंतानुबंधी की चौकड़ी के बंधन में फसते हुए मुक्ति को मुक्त करने के लिये वे स्तुत्य प्रयास करते थे । सूत्रों के रहस्य को न्यायपूर्वक यों समझाते थे किः--

* असंबुद्धेण भंते ! अणगारे, सिञ्जई, बुञ्जई, मुच्चई, परिनि-
व्यायई, सब्बदुक्खाणमंतं करेइ गोयमा ! नो ढण्हे समेट्ठे से के गट्ठेणं
भंते ! जाव अनंत करेइ गोयमा ! असंबुद्धे अणगारे आउयवज्जाओ

* भावार्थः—गृह भारका त्याग किया परन्तु आभारिक आश्रय
द्वारा जिसने नहीं रोके ऐसे पामंड सेवी साधु भवर्वाजरूप कर्म

में थी अपना प्रभाव दिखाया था, कई राजाओं का सदुपदेश दे शिकार और मांस मदिरा छुड़ाई और अहिंसा धर्म की विजय ध्वजा फहराई थी।

पूज्य श्री के आचार विचार:— पूज्य श्री के हृदय की प्रतिच्छाया वर्तमान के उनके साधु हैं 'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति' मोह, या प्यार में जो लेश मात्र स्वतंत्रता दीजाती है वही स्वतंत्रता फिर स्वच्छंदता के स्वरूप में परिणित होजाती है और जिसका फल भयकर असह्य और अक्षम्यदोष उत्पन्न करता है. ये कारण प्रत्यक्ष रखकर किसीभी शिष्य को स्वच्छदी बनने न देते.

भिन्न २ प्रकृति के साधु एकत्रित हो उस सम्प्रदाय को शुद्ध समय की सीमा में रखना सरल कार्य नहीं है। अनंतानुबंधी की चौकड़ी के बंधन में फसते हुए मुक्ति को मुक्त करने के लिये वे स्तुत्य प्रयास करते थे। सूत्रों के रहस्य को न्यायपूर्वक यों समझाते थे कि:--

ॐ असंबुद्धेण भते ! अणगारे, सिञ्जई, बुञ्जई, मुच्चई, परिनि-
व्यायई, सब्बदुक्खाणनंतं करेइ गोयमा ! नो इण्ठे समेठ्ठे से के गठ्ठेणं
भते ! जाव अनंतं करेइ गोयमा ! असंबुद्धे अणगारे आउयवज्जाओ

ॐ भाषार्थ:—गृह भारका त्याग किया परन्तु आश्रितिक आश्रय
द्वारा जिसने नहीं रोके ऐसे पादुंड सेवी साधु भवनीजरूप कर्म

मे लोगों को ठगना या ठगाने देना या फंसाने देना यह महा पाप अयर्म और निर्बलता है । सम्प्रदाय की यह वेपम्नाही आगे गंभीर और भयकर परिणाम पैदा करेगी।

शास्त्र सत्य कहते हैं कि, इंद्रिय और मनको वश रखना यही आत्मा की पहिचान का सरल और उत्तम उपाय है । मानसिक संयम से पापपुंज नहीं बढ़ता मन विकारी होकर दूषित हुआ कि, मानसिक पाप हो चुका इसलिये साधुयर्म के संरक्षणोंमत्त संयम के नियम योजित किये हैं इस अंकुश का दुःस्वरूप समझने वालों का दुःस्वप्न हालत से हाल हवाल हो जाते हैं अनेक आकर्षणों में फंसाने से भव हार जाते हैं निःकुश स्वतंत्रता में साधुओं में स्वच्छंदता, फलह और दुःख मिवाय दूबरे परिणाम भाग्य से ही प्राप्त होते हैं ।

ऐसे सबल कारणों का दैवि दृष्टि से विचारकर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय के कितने एक साधुओं के साथ आहार पानी का समन्ध तोड़ा था । जिसका चेप अभी तक वर्तमान है । चरित्र शिथिलता के चेप का फैलाव रोकने के लिए ऐसे रोगियों को दृढ़ चिकित्सा कर मधे रास्ते लगाने का पूज्य श्री का प्रयास कटु काढ़ के सदृश होने से छूट छाट मांगने वाले मुनि नामधारी पूज्य श्री के वैयावृत्यसे भी अधिक होते लगे ।

से लोगों को ठगना या ठगाने देना या फसाने देना यह महा पाप अन्धर्म और निर्मलता है। सम्प्रदाय की यह नेपत्याही आगे गभीर और भयकर परिणाम पैदा करेगी।

शास्त्र सत्य कहते हैं कि, इंद्रिय और मन को बरा रखना यही आत्मा की पहिचान का सरल और उत्तम उपाय है। मानसिक संयम से पापपुंज नहीं बढ़ता मन विहारी होकर दूषित हुआ कि, मानसिक पाप हो चुका इसलिये साधुधर्म के संरक्षणात्मक संयम के नियम योजित किये हैं इस अकुश को दुःस्वरूप समझने वालों का दुःस्वप्न हालत से हाल हवाल हो जाते हैं अनेक आकर्षणों में फंसाने से भय हार जाते हैं निरंकुश स्वतंत्रता से साधुओं में स्वच्छंदता, फलह और दुःख सिवाय दूसरे परिणाम भाग्य से ही प्राप्त होते हैं।

ऐसे सबल कारणों का दीर्घ दृष्टि से विचारकर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय के कितने एक साधुओं के साथ आहार पानी का सम्बन्ध तोड़ा था। जिसका चेप अभी तक वर्तमान है। चरित्र शिथिलता के चेप का फैलाव रोकने के लिए ऐसे रोगियों को दृढ़ चिकित्सा कर सच्चे रास्ते लगाने का पूज्य श्री का प्रयास कटु काढ़े के सदृश होने से छूट घाट मांगने वाले मुनि नामधारी पूज्य श्री के वैयावृत्यसे भी वंचित होने लगे।

जैसे दूसरे में जिन्हा व ईश्वरवाला, 'मनार्थ' : मेहनत उठा, यह जैन नाम को लताता है, माह मा माभीजी ही मलाह तो व है नि, वेग से मनाओ, भूलें बनाओ, मंझ मोगनों में बनाओ और उन प्रज्ञा में गिरने वालों का हाथ पकड़ो, मूल में समझाओ समझ का नशा उतारकर धान गले उतारो, मन्यमत की प्रवृत्ति में उस वेग को रोको परंतु यत्नान्तर मन करो ।

समाज की मुख्यवस्था यह साधुओं की पदरेवारी का ही प्रताप परिणाम है । समाज के नेता मुनिराज को निष्पक्षपात से उपरोक्त सलाह देते रहने से ही साधुसमाज की कीर्ति ध्वजा पहराती रहेगी ।

खुशामद यह गुप्त विष है । मनुष्य मात्र भूल का पात्र है । भूल करने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले ऐसे कर्तव्य अदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परंतु पक्षांध हो, की हुई, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुन्हा बढ़ाने जैसा महापाप है. यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को उन्नेजना के समान है । यह पक्षपात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर कितना मत भेद उत्पन्न करता है जिसके शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखों आगे मौजूद हैं ।

रोगी को विश्वास दे पाल पपोल कर मुख्य थंश प्रकट करने

[illegible]

समाज की मुख्य समस्या यह सामुग्र्य की पहचान की है प्रताप
परिणाम है । समाज के नेता मुनिराज को निष्पक्षता से उपरोक्त
सलाह देते रहने से ही साधुसमाज की कीर्ति चमका पड़ेगी ।

खुशामद यह गुप्त विष है । मनुष्य मात्र भूल का पात्र है । भूल करने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझने वाले ऐसे कर्तव्य अदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परन्तु पक्षाघात हो, की हुई, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुन्हा बढ़ाने जैसा महापाप है. यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को उन्नतता के समान है । यह पक्षाघात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर कितना मत भेद उत्पन्न करता है जिसके शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखा आगे मौजूद हैं ।

रोगी को विश्वास दे पाल पपोल कर मुख्य अंश प्रकट करने

जैसे दूसरे ही दिशा में चलता है, वैसे ही हमें भी चलना है।
यह तेज नाम को बताता है, मात मा गोपीजी की मना तो यह
है कि, वेग में मनाओ, भूले जाओ, सड़े गोपियों में जाओ
और वन लड़ों में मिलने वालों का साथ पकड़ो, दलील में समझाओ
मम र का नशा नकारकर बात मने नकारो, सत्यमत की प्रशंसा
में उस वेग को रोको परंतु गलाफार मत करो ।

समाज की मुख्य समस्या यह साधुओं की पहरेदारी का ही प्रताप
परिणाम है । समाज के नेता मुनिराज को निष्पक्षपात से उपरोक्त
सलाह देते रहने से ही साधुसमाज की कीर्ति ध्वजा पहराती
रहेगी ।

१ खुशामद यह गुप्त विष है । मनुष्य मात्र भूल का पात्र है ।
भूल करने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले ऐसे
कर्तव्य अदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परंतु
पक्षांध हो, की हुई, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुहा
मढ़ाने जैसा महापाप है. यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को
उत्तेजना के समान है । यह पक्षपात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ
मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर किन्ना मत भेद उत्पन्न
करता है जिसके शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखों आगे मौजूद हैं ।

२ विश्वास दे पाल पपोल कर मुख्य अंश प्रकट करने

एक ने दूसरेपर भिन्न कलंक लगाना, अनर्थ दण्ड सेवन करना, यह जैन नाम को लजाता है, माइत्ता गांधीजी की सलाह तो यह है कि, प्रेम से मनाओ, भूलें बताओ, खड़े खोखलों से बचाओ और उन खड्डों में गिरने वालों का हाथ पकड़ो, दर्तील से समझाओ ममत्व का नशा उतारकर बात गले उतारो, सत्संगत की प्रशंसा से उस वेग को रोको परंतु बलात्कार मत करो ।

समाज की सुव्यवस्था यह साधुओं की पहरेदारी का ही प्रताप परिणाम है । समाज के नेता मुनिराज को निष्पक्षपात से उपरोक्त सलाह देते रहने से ही साधुसमाज की कीर्ति ध्वजा पहराती रहेगी ।

खुशामद यह गुप्त विष है । मनुष्य मात्र भूल का पात्र है । भूल करने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले ऐसे कर्तव्य अदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परंतु पक्षबंध हो, की हुई, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुह्य बढ़ाने जैसा महापाप है यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को उत्तेजना के समान है । यह पक्षपात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर हिनता मत भेद उत्पन्न करता है जिसके शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखों आगे मौजूद हैं ।

रोगी को विश्वास दे पाल पपोज कर मुख्य अंश प्रकट करने

कर उसे सुधारना वुरों का भला कर देना ये दैवी मनुष्य है, दिल की इच्छाएँ घमंड से नम्रता में उतरी कि भूज सुधारने की दृश्य प्रेरणाओं का मनका प्रारंभ हुआ ।

“ अपने देशमें समाज राज बल और तपो बल ऐसे दो ही बलों को पहचानती है और इसमें भी तपोबल की प्रतिष्ठा अधिक समझती है । यह अपने समाज की विशेषता है, मनुष्य विषय वासना के अधीन जितना भी कम होगा उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा उतनी ही उसकी तपश्चर्या होगी, स्वार्थ और विलास की पामरता जिस के हृदय पर कम है वह उतने ही प्रमाण में तपस्वी है । ज्ञान और तपश्चर्या इन दोनों का संयोग ऐश्वर्य है ।

कान के कीड़े खिगाने वाले निंदक की निंदा न करते उस के बंधन वाले पाप कर्मों के लिये दया लाना और उसे सद्बुद्धि उत्पन्न हो ऐसी भावना लाना और यह भावना सकल हो ऐसा प्रयास करना यही सच्ची वीरता, यही हमारे अरिहंत भगवंत का अनुभव किया हुआ सच्चा मार्ग है ।

आसीद्यथा गुरुमनोहरये समर्था ।

त्वत्प्रेमवृत्तिरनघा न तथा परेषाम् ॥

रत्ने यथाऽऽदरमतिर्मणिलक्षणां

नवं तु काच शकलेऽकिरणाकुलेऽपि ॥

कर उसे सुधारना वुरों का भला कर देना ये दैवी मनुष्य है, दिल की इच्छाएं घमंड से नम्रता में उतरी कि भून सुधारने की दृश्य प्रेरणाओं का मनका प्रारंभ हुआ ।

“ अपने देशमें समाज राज बल और तपो बल ऐसे दो ही बलों को पहचानती है और इसमें भी तपोबल की प्रतिष्ठा अधिक समझती है । यह अपने समाज की विशेषता है. मनुष्य विषय वासना के अधीन जितना भी कम होगा उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा उतनी ही उसकी तपश्चर्या होगी, स्वार्थ और विलास की पामरता जिस के हृदय पर कम है वह उतने ही प्रमाण में तपस्वी है । ज्ञान और तपश्चर्या इन दोनों का संयोग ऐश्वर्य है ।

कान के कीड़े खिगाने वाले निदक की निंदा न करते उस के बंधन वाले पाप कर्मों के लिये दया लाना और उसे सद्वृद्धि उत्पन्न हो ऐसी भावना लाना और यह भावना सफल हो ऐसा प्रयास करना यही सच्ची वीरता, यही हमारे अरिहंत भगवंत का अनुभव किया हुआ सच्चा मार्ग है ।

आसीद्यथा गुरुमनोहरये समर्था ।

त्वत्प्रेमवृत्तिरनघा न तथा परेषाम् ॥

रत्ने यथाऽऽदरमंतिर्मणिलक्षकाणां

नैवं तु काच शकलेकिरणाकुलेऽपि ॥

कर उसे सुवारना वुरों का भला कर देना ये देवी मनुष्य है, मिल की इच्छाएँ घमंड से नम्रता में उतरी कि भूत सुगारने ही हरय प्रेरणाओं का मनका प्रारंभ हुआ ।

“ अपने देशमें समाज राज बल और तपो बल ऐसे दो ही बलों को पहचानती है और इसमें भी तपोबल की प्रतिष्ठा अधिक समझती है । यह अपने समाज की विशेषता है, मनुष्य विषय वासना के अवीन जितना भी कम होगा उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा उतनी ही उसकी तपश्चर्या होगी, स्वार्थ और विलास की पामरता जिस के हृदय पर कम है वह उतने ही प्रमाण में तपस्वी है । ज्ञान और तपश्चर्या इन दोनों का संयोग ऐश्वर्य है ।

कान के कीड़े खिगाने वाले निंदक की निंदा न करते उस के बंधन वाले पाप कर्मों के लिये दया लाना और उसे सद्बुद्धि उत्पन्न हो ऐसी भावना लाना और यह भावना सफल हो ऐसा प्रयास करना यही सच्ची वीरता, यही हमारे अरिहत भगवंत का अनुभव किया हुआ सच्चा मार्ग है ।

आसीद्यथा गुरुमनोहरणे समर्या ।

त्वत्प्रेमवृत्तिरनया न तथा परेषाम् ॥

रत्ने यथाऽऽदरमतिर्मणिलक्षकाणां

नैवं तु काच शकलेकिरणाकुलेऽपि ॥

(६५)

समावधानी पद्धति श्री रत्नचन्द्रजी मद्दाराज—नामिक—मोती-
 योग. पत्रा. परम्परे वाले जौहरी का मन कीमती रत्नों पर जैसा
 आदर्शित होना है अतना सूर्य के प्रकाशमें प्रकाशित काच के टुकड़े
 (या इमिशन गो लन्से से भी बाण दिव्यावष्ट में विशेष सुन्दर
 दिखते हैं) के उरफ नहो आदर्शित होना ।



पञ्च श्री श्रीलालजी ।

म भाग २ वा ।

पाल्प जैन ।

राजपूताने के पृथीय नाम नत क होना १००० १०००
नाम का एक नगर बहुत प्राचीनकाल में था । पृथ्वी नाम
पुर में दक्षिण की ओर ६० मील दूर १००० १००० १०००
जय प्रयाग अजीमदा पिढारी ने राजपूताने में एक नया राज्य की
स्थापना की तब उन्होने राजपूताने का अदम नामाया । राजपूताने में
सबसे पीछे जो कोई राज्य थापि । दुआ वा बही राज्य । दोह मा
थोरस माइल का इका प्रसार ह । उसका कितना ही भाग
राजपूताने में और कितना ही मानवा में है । दोह के राज्यकर्ता
अफगान जाति के रोदिजा पठान हैं और वे नमान की परी में

सदृश विश्व में प्रख्यात हुआ । जबतक जीविन रहे इस पृथ्वी पर चन्द्र की तरह अमृत वर्षाते रहे, शीतलता प्रवाहित करते रहे और अनेक भव्यात्माओं के हृदय-कमल को विकसित करते रहे । जिनका नाम भीलाल रखा गया । पुत्र के लक्षण पालने में दिखाये, सूर्य के प्रकट होते ही उसकी सुनहरी किरणें ऊँचे से ऊँचे पर्वत के मस्तक पर जा बैठती हैं इसी तरह इस बालक की प्रतिभा ने आप जनों के अन्तःकरण में उच्च स्थान प्राप्त किया था । इसकी वैजस्विता, मनोहर वदन, शरीर की भव्याकृति, विशाल भाल, प्रकाशित नेत्र इत्यादि लक्षण स्वाभाविक रीति से ऐसी सूचना देते थे कि यह बालक आगे-जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा ।

सूर्यास्त हुए थोड़ा ही समय बीता था । उस समय उन्हें स्वप्नावस्था में एक देदीप्यमान कांतिवाला गोला दूर से अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया । थोड़े ही समय में वह विलकुल समीप आ पहुँचा । ज्यों २ वह समीप आता गया त्यों २ उसका प्रकाश भी बढ़ता गया । माजी आश्चर्य चकित हो गई प्रकाश के मध्य स्थित कोई मूर्ति मानो कुछ कह रही हो ऐसा भास हुआ परन्तु असाधारण प्रकाश से उनके हृदय पर इतना अधिक लोभ हुआ कि मूर्ति ने क्या कहा उसकी स्मृति न रही धड़कती छाती से वे जग पढ़ी और पति के पास जाकर सब हकीकत निवेदन की ।

मूल में सत्यता, सत्य स्वभावी और सामाजिक विचारों
 की तरफ इनकी कीर्ति थी। विद्यागुरुओं के ये विनिर्माण और
 आसी थे। श्रीलालजी के उच्च गुणों में मुख्य रूप महाशय
 नमें पूर्ण प्रेम रखने थे और सम्मान देते थे। इतना ही न
 रन्तु उनके नाना गुणों की सब कोई विशुद्धभाव में शलाका कर
 ।। अपने विद्यागुरु की ओर श्रीलालजी का प्रेमभाव भी प्रमंश
 प्र था और शाला छोड़ने के पश्चात् भी यैसा ही प्रेम कायम
 सका एक उदाहरण यहां देते हैं।

सं० १९४४ में अपनी अठारह वर्ष की अवस्था में ज
 न्होंने अपने मित्र गुजरमलजी पोरवाल के साथ स्वयं दीक्ष
 प्रगोष्ठ की तब उन्हें प्रायः सात तोले की एक सोने की कंठ
 प्रेध्यापक महाशय को इनायत की थी।

उदाहरण इन महापुरुष के जीवनचरित्र में स्थान स्थान पर दृश्यमान हैं ।

श्रीलालजी का स्वभाव बहुतही कोमल और प्रेम पूर्ण होते से उनके बालस्नेहियों की संख्या भी अधिक थी । उनके साथ उनका वर्तन बड़ाही उदार था । श्रीलालजी के उत्तम गुणोंकी छाप मित्रममूर्ति पर जादूसा असर करती थी वच्छराजजी और गुजरमलजी पोरवाल ये दोनों उनके ग्य.स मित्र थे । श्रीलालजी के वैराग्यमे इन दोनों मित्रों के हृदय पट पर गहरी छाप लगी थी और इसीसे उन्होंनेभी उनके साथ संसार परित्याग कर आत्मोन्नति साधन करने का दृढ संकल्प किया था. परन्तु पीछे मे वच्छराजजी को आज्ञान मिलनेमे वसी तरह संयोगो की प्रतिकूलता होने से दीक्षा न ले सके और गुजरमलजी ने श्रीलालजी के साथ ही दीक्षा ली । श्रीलालजी के प्रति इनका अत्यन्त पूज्यभाव था ।

स्कूल के श्रीलालजी के सहाध्यायी उन्हें इतना चाहते थे कि जब वे स्कूल छोड़कर अलग हुए तब आँखों मे अश्रु लाकर रुदन करने लगे थे. उनके मित्र उनका वियोग सहन नहीं कर सके थे उनकी सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, और प्रेम मय स्वभाव से उनके मित्रों का हृदय द्रवीभूत होता था । परन्तु उन्हें विशेषतः वशीभूत करने वाला कारण उनका क्षमागुण था. श्रीलालजीका हृदय इतना

[illegible][illegible]

जन्म के शुभ्र संस्कारों के प्रभाव से बालवय-में ही वैराग्य के बीज अंकुरित हुए थे और जिन वाणीरूपी अमृत जन का बार-बार चवन होने से अब वह वैराग्य वृक्ष विशेष पल्लवित हो बढ़ गया और उसका मूल भी गहरा पैठ गया था तो भी अनिच्छा से बर्तों की आज्ञा चुप रह कर शिरोधार्य करते रहे । उनकी यह प्रवृत्ति शायद पाठकों को अरुचि कर होगी और यही प्रश्न मन में उठेगा कि व्याह न करना ही क्या बुरा था ? परन्तु कर्म के अचल फायदे के आगे सबको सिर झुकाना पड़ता है और प्राकृतिक सर्व कृतियाँ सर्वदा हंतुयुक्त ही होती हैं । श्रीमती मानकुंवर बाई के श्रेयस् का मार्ग भी इसी प्रकार प्रकट होना विधि ने निर्माण किया होगा । श्रीमती को भीमती चांदकुंवर बाई जैसी सुशिक्षिता सास के पास में उत्तम उपदेश (शिक्षा) सम्पादन करने का सुयोग प्राप्त हुआ और पवित्र जीवन व्यतीत कर दीक्षिता दो छः वर्ष तक संयम पान पनि में पहिले स्वर्ग में पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह भी इसी पत्रादि में परिणाम हुआ ऐसा अनुमान करना अनुचित है कि कोई बात सकेगा ? हा ! अलियज्जी का हृदय नरा समय तक बसा हुआ था और ज्ञानाभ्यास की उन्हे अपरिमित विषामा निमित्त दे परन्तु दीक्षा लेने का हृद निश्चय नम विधिया तक दीक्षा में नहीं रह सकते ।

शास्त्र में भी उनका ज्ञान प्रशंसनीय था । वे भी श्रीजी की पंक्ति में ही सामायिक करके बैठे थे । अकस्मान् उनकी दृष्टि श्रीलालजी पर पड़ी । श्रीजी के शारीरिक लक्षण को बार २ निरखने लगे । व्याख्यान पूर्ण होने पश्चात् अपनी कोठी पर गए और भोजनादि से निवृत्त हो दुकान पर आये । थोड़े समय पश्चात् हीरालालजी वस्त्र भी कार्यवशात् चुन्नीलालजी डागा की दुकान पर गए, तब चुन्नीलालजी डागा हीरालालजी से कहने लगे कि “ श्रीलाल आज प्रातःकाल व्याख्यान में मेरे पास ही बैठा था । उसके शारीरिक लक्षण मैंने तपास कर देखे । मुझे आश्चर्य होता है कि यह तुम्हारे घर में गोदड़ी में गोरख ज्यों ? यह कोई पाधारण मनुष्य नहीं । परन्तु बड़ा संस्कारी जीव है । सामुद्रिक शास्त्र सच्चा हो और मेरे गुरु की ओर से मिली हुई प्रमादी सच्ची हो तो मैं छाती ठोकर कहता हूँ कि यह तुम्हारा भतीजा आगे जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा । जहां तक मेरी बुद्धि पहुंच सकी वहां तक मैंने महान् विचार किया तो मैंने यही मार निकाला कि यह रहम तुम्हारे घर में रहना मुश्किल है । ” श्रीयुग हीरालालजी तो ये शब्द सुनकर स्तब्ध ही हो गए ।

तब गमन श्रीजी शहर के बाहर निकलकर पान के पर्वतों पर चल गये और वहां बंदो ठहरने । वहां के नैसर्गिक दृश्य और

* शिव जी के चरणों में गिर पड़े। वे परमेश्वर की आज्ञा
 मानकर और स्वयं को त्याग करके उनका
 पद धूम्र, लाल, नीला, शिवाय शक्तिपरायण
 मानते हैं। अपने उभय तट पर शक्ति लाया
 और परंपरा परमाणु जीवन पिताने का
 मिश्रता, धार्मिक गति से कहता था। चामर का
 नीचे झुक विनय का पाठ भिराते और अपने
 दुनिया में परमार्थ बुद्धि की प्रभावना करने को ही
 प्रतीति दिलाते थे। एक गाँव पर लगे हुए बट मूल पर
 ही यह सूचना मिलती थी कि राई जैसे बीज से ऐसी च
 हो जाती है। संसार में जरा फसे तो अंगुली पकड़ते
 पकड़ते।

संसार में, फंसते हुए को बचाने का उपदेश देने वाले
 का आभार मानते। श्रीजी के तात्त्विक विचार भावी ज
 इमारत की नींव दृढ़ करते थे। कठिन पथरों से टकरा कर
 करने वाली सरिता के तट पर रसेन्द्रिय की लोलुपता के क

* उदयपुर के सरोवर से निकली हुई बडच नदी
 जा मिलती है।

‘सन्तोषिता ने सदा से तू ही मेरी शरण ली,
 प्रेम-प्रेमों को देने, प्रेम-प्रेमों को देने
 भला-कमल को देने, भला-कमल को देने
 भला-कमल को देने, भला-कमल को देने
 रती रत्नी तभी रत्नी, तभी रत्नी तभी रत्नी
 भला-कमल को देने, भला-कमल को देने

भला-कमल

प्रकृति की अभूत शक्ति में भी-भी के रूप में भी-भी
 हुआ वैराग्य भाव उनकी कोमलता और सत्यता के
 वनत और व्यवहार में भी व्यक्त होने लगा । कल मित्रों में
 नहीं परन्तु अब तो माता और भ्राता के समान भी मानवजीव
 की दुर्लभता, ससार की अमरता और साधु जीवन की श्रेष्ठता का
 आशय के वाक्य श्रीजी के मुखारविन्द में पुनः २ निकलने लगे

गृहकार्य में तनिक भी ध्यान न देने केवल मत्समागम ज्ञाना-
 ध्यान और एकान्तवास में ही वे समय बिताने लगे ।

श्रीलालजी की यह सब प्रवृत्ति और संसार की ओर से उदा-
 सीन वृत्ति देख उनकी माता प्रभृति सम्बन्धीजन के चित्त चिन्ता
 प्रस्त हुए । जो माता अपने पुत्र का धर्म पर अति अनुराग देखकर

महाराज की आज्ञा पर मैंने तब तक नहीं किया कि जब तक कि मैंने
 - - - - - ही निजाम का काम नहीं देखा - - - - -
 - - - - - के काम काज पर इन्होंने विचार किया कि मैंने देखा था कि
 इन्होंने कामों में मेरे होने दिखाने की कोशिश की।

महाराज की आज्ञा पर मैंने तब तक नहीं किया कि जब तक कि मैंने
 नहीं है। यह प्रमाण के माध्यम से पता चलता है कि महाराज के
 निम्नलिखित २ वक्तव्यों का जवाब है जो कि महाराज के सामने
 दिया रहता है।

सं० १६३६ में श्रीजी की भर्मापत्नी मानकृष्ण साहू को दुर्ग
 में मोना लं टोंक ले आये, उस समय उनकी उम्र १२-१३ वर्ष
 की थी। पुत्रवधू के आगमन से माम का हृदय आनन्द में डूब
 गया और उन्हें उनके विनयादि गुण और योग्यता देखकर तब
 अपनी आशा सफल होने के संकेत मानूँग हुए। श्रीजी के महा
 ध्यायी मित्र भी उसकी परीक्षा करना चाहते थे कि, श्रीजी का वैराग्य
 पतंग के रंग जैसा क्षणिक है या मजीठ के रंग जैसा है। इस
 परीक्षा का क्या परिणाम होता है तथा श्रीजी के कुटुम्बादिक जनों
 की आशा कितने अंश तक सफल होती है यह अब देखना है।

श्रीजी ने कई वचनमृत जेब में रखने की छोटी पुस्तिका में

अध्याय ३ रा.

भीषण प्रतिज्ञा ।



श्रीजी नित्य की तरह अपने परोपकारी गुरुवर्य का व्याख्यान आज भी प्रेमपूर्वक सुन रहे हैं । वीर प्रभु की अमृत मय वाणी के पान से श्रोताजनों के हृदय भी आनन्द में झनझने लगते हैं । व्याख्यान में आज ब्रह्मचर्य का विषय है । ब्रह्मचर्य सय सद्गुणों का नायक है, ब्रह्मचर्य स्वर्ग मोक्ष का दायक है, ब्रह्मचारी भगवान् के समान हैं, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राजस, किन्नर और षडे २ चक्रवर्ती राजा भी ब्रह्मचारी के चरण कमल में मिर झुकाते हैं और उनकी पूजा करते हैं इत्यादि सार में भरी हुई सूत्र की गाथाएं एकके पश्चात् एक पढ़ी जाती है और रहस्य समझाया जाता है । नीचे २ में नैमनाथ, राजेमर्ता, जम्बू कुवार विजयसेठ, विजयारानी इत्यादि आदर्श ब्रह्मचारियों के दृष्टान्त भी दिये जाते हैं और उनके यशोगान गाये जाते हैं ।

एक ब्रह्मचारी पूज्य पुरुष क मुखारविन्द से ब्रह्मचर्य धर्म की इस प्रकार अपार महिमा सुन श्रीजी के हृदय सागर में इच्छाओं की उमंगें उठने लगीं, तरंगों ने क्षुब्ध महासागर की तरह उनका

તા વિન તોના તો મેં તારા નામ નામાવિ
 તારા પાશવ પર મુને પૂર્વ પાશવ તારા પાશવ મેં મી મી
 તા સર્વ તરુ નહીં તરુમા । તારા મન મેં મનુ મી મન મન
 મીની મેં મેને મિનુ : મનમી મન તારા મેં મી મી મી મી
 પ્રાર વે પ્રપતી પ્રાપ્તિ મેં તારા કલ્પાદ તારા મેં પ્રાપ્તિ તારા મી
 તરુ કિંમ । જુવાની મેં મેને મિનુ પ્રાપ્તિ મી મી મુખ્ય મી
 મી કલ છે ।

જરા જન જાલવી લેજે, ઓર ઓરી જુવાની છે ।
 કલંકિત કીર્તિ ને કરશે, સરે ! વેર જુવાની છે ॥
 અભિમાને કરે અંધા કમલે નીચ ના ધન્ધા ।
 વિચારો ફેરવે સન્ધા જુવાનીનો ગુમાની છે ॥
 વનાવ્યા કૈકને કૈદી, તસાવ્યા શીવ કૈક છેદી ।
 જુવાની શત્રુ છે મેદી ન માનો કો મજાનો છે ॥
 વિકાશે ને વલગનારી, વતાવે પાપની વારી ।
 ગુજાડે હાડે ના સારી, પીટા કારક પીછાની છે ॥
 તમક સંસારના પ્રાણી જુવાની માન મસ્તાની ।
 ઓરે'પણ ચાર દોઢાંની જુવાની જાણ ફાની છે ॥
 કથે શંકર છુટી કાયા છુટી સંસાર ક્લી મયા ।
 જુવાનીની છુટી ઢાયા છુટી આ જિન્દગાની છે ॥

माजी के कहने में इस बात की गारान्ती के मन्तव्य करने फिर सेठ हीरालालजी को हुई । सेठ हीरालालजी ने पीलाबन चुलाकर कहा कि, नगरदार ! दीक्षा का किमी दिन नाम भी लिया तो ! आज से तूने साधु के पाम भी किमी दिन नहीं जाना । साधु तो निठले बैठे २ लड्डो को चढ़ा मारते हैं । ” इन शब्दों से श्रीलालजी के हृदय में बहुत दुःख हुआ । उन्होंने बोलने का प्रयत्न तो किया, परन्तु कुछ बोल न सके । अपने पिता के बड़े भाई हीरालालजी की आज्ञा का उनने कभी उल्लंघन नहीं किया था तब उनके सामने बोलना भी उन्हें दुःसाध्य था । सेठ हीरालालजी ने नाथूलालजी से भी कहा कि “ इसकी बहुत संभाल रखना और साधु के पास इसे बिल्कुल मत जाने देना ” ।

हीरालालजी सेठ की सख्त मनाई होने पर भी श्रीलालजी गुप्तरिति से अपने गुरु के पास जाने लगे । सद्गुरु का वियोग न सह सके । सत्संग में कोई अनोखी आकर्षण शक्ति रहती है श्रीजी की उत्तम ज्ञानाभिलाषा और सत्संग के आकर्षण के समीप सेठ हीरालालजी की ओर का भय कुछ गिनती में न था ।

एक दिन श्रीजी ने परमप्रतापी पूज्य श्री उदयसागरजी

* इन महापुरुष का जीवन-चरित्र गुर्वावली में दिया है ।

बरकटा थी । इसके विना उनको बटरी। रंग ही न था किसी में
 तरह किसी भी युक्ति पशुक्ति से या जन्तु में राजा कायमे भी मंगलमंगलमे
 की थी । जैनशास्त्र का ऐसा कायदा है कि जयन्तक मंग की प्राप्ति
 न मिले तबतक दीक्षित न हो सके । श्रीजी ने बहुत २ प्रयत्न
 किये, परन्तु आशा नहीं मिली । इससे श्रीजी को बहुत दुःख
 हुआ और ऐसा निश्चय किया कि अब तो किसी दूर देश में जाम
 सन्त महन्त की सेवा कर जैन सूत्रों का अभ्यास कर आत्मिक
 साधना चाहिये ।

की शक्ति का नाप नहीं हो सकना । आवश्यकता उपस्थित होती है, तब ही प्राकृतिक अकलकला के प्रदर्शन निरगमने का मौका मिलता है । शिवदासजी ऋणवाल श्रीलालजी तथा उनके कुटुम्बीजनों में पूर्णतया परिचित होने से सब हाल जानते थे । इसलिए उन्होंने दूसरे दिन एक ऊंट किगाये कर श्रीजी को समझा बुझा टोंक की तरफ खाना किया और जबतक तबीयत नादुरुस्त है तबतक टोंक में रहने की ही हिदायत की । तथा ऊंटवाले से भी खानगी रीति से कहा कि तुम इन्हें टोंक पहुंचाकर चिट्ठी लाओगे तभी भाड़ा मिलेगा । उसी दिन शाम को श्रीजी टोंक पहुंचे ।

श्रीजी—एक कपड़े से भगे उसकी खबर नाथूलालजी को मिलते ही वे तुरंत उन्हें ढूंढने निकले । वे कपासन, निम्बाहेड़ा हो खबर मिलते ही पीछे टोंक आये । उस समय श्रीजी भी टोंक आया पहुंचे थे । नाथूलालजी ने श्रीजी से यह गद्गद कंठ से कहा " भाई तुम इस तरह घड़ी २ चले जाते हो इसीलिये हमें बहुत हैरान होना पड़ता है और तुम भी तकलीफ पाते हो ,,

श्रीजी—यह तकलीफ दूर करना तो आपके ही हाथ है दीक्षा व आशा दो कि, सब तकलीफ भिट जाय माजी (बड़ा हाजर थे) बोल न " दीक्षा लेनी थी तो क्याह क्यों किया ? तेरे गए बाद इस बिचा का रक्षक कौन होगा ? ,,

संसार का सार समझा उसका जन्म सार्थक किया था, जिससे पुत्र का श्रेय हो उसमें माता को अंतराय न देना चाहिये ।

माताजी कुछ बोल न सके उनका हृदय भर आया, आँखों से अश्रु प्रवाह प्रारंभ हुआ । नाथूलालजी की चकौर चतुर्श्रों ने भी माताजी का अनुकरण किया इस करुणा रसपूरित नाटक के समय श्रीजी के हृदयसागर में तो ऐसी ही तरंगे उठ रही थीं कि—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः ।

नित्यं सन्निहितो मृत्युस्तस्माद्धर्मं च साधयेत् ॥

श्रीजी बाहर की हवेली में जाने के लिये उठ खड़े हुए । और मातु श्री को आश्वासन देते बोले— “ मातु श्री ! आपके संसार मोह के अश्रु आपकी मस्तिष्क की गर्मी को शांत करते हैं तो भी उन्हें देखकर मुझे दुःख होता है ।

परन्तु मातु श्री ! आप क्या नहीं जानते की बार २ होते हुए जन्म, जरा और मृत्यु के अनंत दुःखों के सामने यह दुःख किस गिनती में हैं । आपको दुःख हुआ इसीलिये क्षमाता हूं । माजी ! यदि तो आपका अनुभव किया हुआ आप भूल जाते हैं कि—

“ नो मे मित्रकलत्रपुत्रनिकरा नो मे शरीरं त्विदम् ”

मित्र, कलत्र, पुत्र, शरीर आदि मे से कोई भी क्षपना नहीं ।

पाँव लगे । माजी उस समय मानिकलाल को रमाती हुई खड़ी थी श्रीजी ने उस छः माह के बालक (मानिकलाल) को प्रेम से माता के पास खे ले लिया और अपनी गोद में बिठाया । थोड़े समय तक उसे रमाया और फिर माजी के हाथ में देकर श्रीजी बोले “ इसकी अच्छी सरह रखना ” माजी बोले “ बेटा ! इसकी और हमारी संभालने का काम तो तुम्हारा है ” श्रीजी मौन रहे । वैराग्य के विचक्षुरित होने लगे ।

प्रियवाचक ! हम लोग भी एक तत्त्ववेत्ता के विचारों का मर्म करें “ इच्छुक हृदय नहीं बोल सकते, अगर बोल सकते हैं तो उन्हें के नहीं सुन सकता । किसी को प्रवाद भी नहीं, शोक पूर्ण नयन दर्द नग सकेते ” अगर रोते हैं तो लोग हंसी करते हैं.....

“भावज्ञ और गति” की यह दुनिया तथा ‘शान्ति और एकान्त’ का यह जगत् भिन्न २ होने पर भी बहुत समीप २ है. गुप्त जिज्ञा की यह इन्द्राण, हृदय के कई चमरते आंसू, बुद्धि की कितनी अवनत तरंगें हमें निश्चय होती मानूस पड़ती हैं । जिन इन्द्राणों में प्रवेश होने के लिये अगार में स्थान नहीं, अश्रु के प्रवाद । प्रवेश जिन जगत् की सहायता की आवश्यकता नहीं, तरंगों को मूर्ति । अवनत तरंगें जिन दुनियां अनुकूल नहीं ।

बिना संयम लिये टोंक में पॉव भी न देंगे ” ।

अंत में निराश हो नाथूलालजी तथा हरदेवजी टोंक की तरफ रवाना हुए परन्तु जाते समय टोंक निवासी बालजी नाम के ब्राह्मण को वहीं रन्वराए और उसे कह गए कि, जहां २ श्रीजी विचरें वहां २ तुम्हारे इनके साथ जाना इनकी सार संभाल लेना और इनके कुशल वर्तमान से हमें रोज २ स्थान २ सहित टोंक लिखते रहना ।

नाथूलालजी ने टोंक आकर माजी प्रभृति से सब समाचार कहे और कहा कि, संसार में रहने की उनकी बिल्कुल इच्छा नहीं है । माजी ने कहा कि, मुझे यह बात नई नहीं मालूम होती अब उसे अधिक मताना मुझे ठीक नहीं लगता ।

यह उत्तर सुनकर माँजी का मन भर गया । माँ ने उसे
 प्रभुगत होने लगा । जैसे समय नरु निभार निभान से लगे
 फिर लक्ष्मीचन्द्रनी तथा माँजी से कहा कि, वि. मानिकजी
 (नाथूलालजी का पुत्र) को भीजाल में के नाम पर रखो । माँ
 लालजी ने माँजी की यह आज्ञा शिरोधार्य की, फिर माँजी ने कहा
 "भुव ने तुम आज्ञा देने जानो । मेरा आशीर्वाद है कि भीज
 सुन्दर रीति से संयम पाले, आत्मा का कल्याण करे और जो
 मार्ग दिपावे " । धन्य है ऐसी उत्कृष्ट उन्माद वाली माताओं को ।
 इसी तरह गुजरमलजी पोरवाड़ की माता तथा उनकी स्त्री तब
 उनके भाई सांगीलालजी को समझा उनकी दीक्षा की आज्ञा से
 प्राप्त की । पहिले से ही साधु का वेष पहिन लिया होने से कि

* माता के सम्बन्ध में एक कथा पूज्य श्री कहते कि पाँ
 पुत्र वाली एक माता के एक पुत्र की इच्छा दीक्षा लेने की हो
 से गुरु श्री ने माता को सदुपदेश दे अपने पुत्र की भिक्षा देने क
 उस माता ने अपने अहोभाग्य समझ एक के बदले दो पुत्रों
 'गुरुजी के शिष्य बनाये ।

यह सुन श्री गी महाराज के शिष्य श्री गुरुजी के मुख
भी मुनिचन्द्रजी महाराज कि, जो तहां विराजमान थे वे भी
ये बोले कि " भीलानजी ! तुम्हें जाना मनी न करना चाहिए
मान प्राचार्यजी महाराज बहुत ही दीर्घदर्शी, पवित्रात्मा, मम
ज्ञान और चतुर्विध सन के परमहिनेगी हैं उनकी प्वा
देरना वंग कर श्रीसंघ की सेवा बजाओ और जैन-शासन के
दपाओ " । इन वचनों को चतुर्विध सन ने बहुत २ अनुमोद
दिया तब श्रीलानजी महाराज दोनों हाथ जोड़ सिर नम्रा मीन
पश्चात् प्राचार्यजी महाराज ने श्री चतुर्विध संघ की सम्मति पृ
युवाचार्य पद प्रदान किया और चतुर्विध संघ को उनकी आ
पालन करने का हुक्म फरमाया, तब चतुर्विध संघ ने हर्ष गर्ज
के साथ खड़े हो अत्यंत भक्तिभाव सहित नवयुवाचार्यजी महाराज
सेवामें वंदना की ।

श्रीमान् आचार्य श्री चौधमलजी महाराजने अपना अवसर
काल समीप समस्त संथारा किया संथारे की स्वर विजिती की तरह च

करना चाहिये और सम्प्रदाय की रीतानुसार दीक्षा में नये मुनियों को वे वदना करेंगे और छोटे मुनियों उन्हें नंदना करेंगे परंतु सब को उनकी आज्ञा में चलना चाहिये ।" ये शब्द सुनकर सब ने एक ही आवाज में पूज्य श्री को निधाम दिलाया कि आज्ञाते आपकी आज्ञा को प्रभु आता समान समझ हम आपको आज्ञा में विचरेंगे ।

पश्चान् सद्गत आचार्य श्री के मृत देह को हजारों मनुष्यों के हृ में मनोहर विमान में पधरा बड़े धूमधाम से जय २ नंदा । २ भद्रा के शब्दों से आकाश को गुंजाते शहर के मध्य हो शमशान में ले गए वहां चदन, नाष्ट घृतादि से अग्निसंस्कार किया ।

आचार्य श्री चौथमलजी महाराज अंतिम तीन वर्षों से रतलाम स्थिरवाम थे, कारण कि उनकी नेत्र शक्ति क्षीण हो गई । कारण से और वृद्धावस्था होने से साधुओं की बहुत संख्या की एक गद्दी सम्प्रदाय की भली भांति संभाल करने का कार्य आचार्य श्री चौथमलजी महाराज को मुश्किल मालूम होने से सम्प्रदाय की सम्यक् रीति में सार संभाल और चरति होने से ये उन्होंने अपनी आज्ञा में विचरते साधुओं में से चार साधुओं । प्रतीक की तरह मुकुरंग कर सब अधिकार उन्हें सौंप दिये थे व । प्रयत्नों के नाम निष्पाकित हैं ।

अध्याय ११ वाँ

सदुपदेश-प्रभाव ।

भीलवाड़ा—पूज्य श्री श्रीलालजी महागज उदा
भीलवाड़े-पधारे शेषकाल कल्पने दिन ठहरे । भीलवाड़ा के
महाराजी श्री गोविंदसिंहजी साहिब ने श्रीमान् के सदुपदेश
रत्न प्राप्त किया । वे व्याख्यान में पधारते थे, जैनधर्म
वनकी हठी २ की मीजी में रम गया था, वे पूज्य श्री के
भक्त बन गए । उपरोक्त हाकिम साहिब ने जीवदयाक अने
कार्य किये हैं और जैनधर्म का बहुत उद्योग किया है ।

श्रीगुरु कर्गोहीमलजी सुगणा कि, जो भीलवाड़े के एक
सम्राट् ने उन्हें पूज्य श्री के सदुपदेश में वैराग्य उत्पन्न
कराईने उन, माल, जमीन इत्यादि त्याग कर सं० १६५८
वैशाख वस १ के रोज बट ठाठ (भूखाम) में दीक्षा ली

श्री श्री के व्याख्यान में रामती अन्तर्गति, हिन्दू गुण
वैराग्य, ब्रह्म समागत अतीति श्रीजी के पाग प्राप्त थे
११ ११११ की पाग पूर्ण प्राप्त होया था ।

किन्तु अन्य मतावलंबियों ने जैन-धर्म अंगीकार किया सुप्र-
 सिद्ध सुश्रावक गणेशीनालजी मालू कि, जी साधुमार्गी जैन धर्म के
 कट्टर विरोधी थे पूज्य श्री के परिचय और अनुपदेश से दृढ़ श्रावक
 बन गए और चातुर्मास में श्रीजी के दर्शनार्थ आये हुए सैकड़ों
 श्रावक श्राविकाओं के आगत स्व गव तथा भोजन इत्यादि का तमाम
 प्रबंध उन्होंने अपने खर्च से किया था । इतनाही नहीं परंतु जैन-
 धर्म के उद्योत के लिये तथा जनसमूह के हितार्थ परमार्थ कार्य में
 उन्होंने लाखों रुपयों का सद्व्यय किया और वर्तमान में उनके

अध्याय १२ वाँ

अपूर्व—उद्योत ।

पृथ्वी का चातुर्मास होने के कारण उदयपुर संघ में आमन्देसमय छा गया पहिले कभी किसी स्थान पर पक्षीसंरंगी सामयिक होने का वृत्तान्त नहीं सुना था। वह पक्षीसंरंगी यहाँ पर हुई इस संवर-करणी में ६२५ पुरुषों की उपस्थिति की आवश्यकता होती है। लोगों का उत्साह इतना अधिक बढ़ा था कि, बिलौ निवासी मोक्षसिंहजी सुराना ने एक ही आमन पर एक साथ १५१ सामायिक किये। एवं दिन रात खड़े रहकर सामायिक का समय व्यतीत किया। इसी भाँति घेरीलालजी महता ने १३१, तथा कन्हैयालालजी भंडारी ने १३१ सामायिक खड़े रहकर किये और अति उत्साह-पूर्वक पक्षीसंरंगी के ऊपर सामायिक की पक्षरंगी तथा नक्षरंगी की। इस चौमासे में १०८ अठाइयाँ हुई थीं। इसके सिवाय सैकड़ों रंघ तथा अन्य प्रकार की भी बहुतसी उपभर्या हुई थी।

कई खटीकों (कसाइयों) ने हमेशा के लिये जीवहिसा करने का त्याग किया। इस प्रकार त्याग करने वाले खटीकों में से

“ आजविन शिकार नहीं खे
प्रतिज्ञा की । ”

एक-गृहस्थ कायस्थ लाला
गान होते हुए भी ब्रह्मचर्य व्रत
का स्वीकार किया, सामायिक
और छठ धर्मी जैन बन गये ।
गंडस्त भव्य गालुम होता था ।
धों । चेहरे पर माधुर्य, गाभीर्य
का प्रकाश झलकता था । जिस
दृष्टानुसार प्रभाव पड़ता था ।

सरकारी मेम्बर बाबू दामो
नर के प्रत्यक्ष गृहस्थ थे वे श्री
मान कर अत्यन्त हर्षित होते, स
मिनी ही बार तो वे व्याप्तान
प्राप्त भी मंद मंद मार मे—

गईया—गीत हिमानज

गद मोनम के शुन कुंड हली है ।
मोद मनामन मोद चली,
मन की मडना मन दूर करी है ॥

(२२२)

अध्याय २० वाँ ।

राजस्थानों में अहिंसा धर्म का प्रच

वहां से अनुक्रम विहार करते आचार्यश्री १३ ठाणों :
 जंगपुर हो कपासन पधारे, यहां श्रीजी के चार व्याख्यान हुए। जैन
 वैष्णव, मुसलमान इत्यादि सब धर्म वाले मिलाकर प्रायः २०००
 मनुष्य व्याख्यान में उपस्थित होते थे, जीव-दया का पूज्य श्री के मुंद
 उपदेश सुनते २ वहां के श्री संघ के दिल में दया आई और जीव
 को अभयदान देने के लिये एक स्थायी फंड कायम करने का प्रयत्न
 किया- तुरन्त ही उस फंड में १०००) रु० एकत्रित हो गए,
 व्याख्यान में कोठारीजी बलवंतसिंहजी साहिब तथा हाकिम साहिब
 जोधसिंहजी तथा चित्तौड़ के हाकिम श्री गोविन्दसिंहजी प्रभुति भी
 पधारते थे।

चड़ीछादड़ी कः चातुर्मास पूर्ण किये पश्चात् आचार्य महाराज
 रतलाम की ओर पधारे। वहां श्री जैन ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थी
 भाई मोहनलाल मोरवी वाले ने उत्कृष्ट वैराग्य से पूज्य श्री के
 समीप दीक्षा ली, जिनका दीक्षा-महोत्सव रतलाम श्रीसंघ ने अत्यंत
 दी हर्षोत्साहपूर्वक किया वहां से विहारकर मार्ग में प्रगति।
 उपहार करते हुए पूज्य श्री मानवा मारवाड़ को पानन ररे
 नि रने लगे। कितने ही भज्य जीवों ने वैराग्योत्पन्न होनेसे हीता भी।

अध्याय ३२ वाँ ।

विजयी विहार ।

नोभपुर से अनुक्रमशः विहार करते पूज्य श्री नयेनगर पवारे वहां मुनि श्री देवीलालजी स्वामी का मिलाप हुआ जय काठियावाड़ में पूज्य श्री विनरते थे तब जावरा वाले संतों के सम्बन्ध में पूछताछ की तो उन्होंने उत्तर दिया कि, मालवा में पभार आप उचित निर्णय करें परन्तु जयपुर के भावकों ने श्रीजी महाराज से जयपुर पधारने की प्रार्थना की थी उसके उत्तर में उन्होंने जयपुर पधारने के लिए कुछ आश्वासन दिया था इसलिये उन्होंने जयपुर हो फिर मालवा की ओर पधारने का विचार दर्शाया तब देवीलालजी महाराज ने भी जयपुर पधारने की इच्छा प्रकट की ।

नयेनगर में उस समय पूज्य श्री के पधारने से अपूर्व आनन्दोत्सव छा रहा था पूज्य श्री तथा देवीलालजी महाराज के सिवाय पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के पूज्य श्री नंदलालजी महाराज ठाणा ५ तथा श्री पन्नालालजी के बलचंदजी महाराज ठाणा ७ तथा आचार्य श्री के मुनिवरों में से मुनि श्रीलालचंदजी शोभालालजी आदि कुल ५४ मुनिराज तथा ३३ आर्याजी वस

उस मौके पर रागा निशामी भाई श्रीगुजालजी मनेजी ने पूर्ण नैराश
पूर्णतः गो पूज्यजी महाराज के पास हीजा मङ्गल की वस दीक्षा
महोत्सव के समय करीब ४ मे ५ हजार मनुष्य उपस्थित थे ।

श्रीमान् गन्दाभिपानि के दर्शनार्थ पंजाब, राजपुताना, मेवा
मारवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ आदि देशों के सेकड़ों
मनुष्य आये थे, जिनका तन, मन, धन से नयेनगर वालों ने बराबरी
रोषि से आतिथ्य सत्कार किया था ।

पूज्य श्री के पधारने से व्यापार उस समय एक तीर्थस्थान के
नाई हो रहा था ।

पूज्य श्री नयेनगर से अजमेर पधारे और जयपुर पधारने के
जल्दी होने से अजमेर नगर के बाहर ही सेठ गुमानमलजी को
की कोठी में विराजे । परन्तु उनका पुण्य प्रभाव तथा आकर्षण
शक्ति इतनी अधिक प्रबल थी कि व्याख्यान में साधुमार्गी श्रावण
के सिवाय सेकड़ों हजारों की संख्या में जैन अजैन सज्जन उपस्थित
होते थे और सेठ गुमानमलजी साहिब की विशाल कोठी के भीतर
के विशाल आंगन पर के चौक में भी पीछे से आने वाले के
बैठने तक का स्थान न मिलता था । इस समय प्रसंगोपात् पूज्य श्रीने
प्राणिरक्षा के सम्बन्ध में उपदेश दिया उस पर से श्रीमान् रायसेठ
चांदमलजी साहिब की प्रेरणा से रा० ब० सेठ सोभागमलजी उठ

अध्याय २३ वाँ।

सम्प्रदाय की सुव्यवस्था ।

रतनाम (चातुर्मास) से १६७१ एम सतग भी पूज्य पभारने से रतनाम में शानन्दोत्सव हो रहा था, व्याख्या लोगों की मंडलियां की मण्डलियां आने लगी थीं। श्रीमान् ठाकुर माहिष पंचेड़ा से हास पभार कर व्याख्यान का काम ये उपरांत राजकर्मचारीगण इत्यादि तथा हिन्दू मुसलमान संख्या में व्याख्यान भवण करते और उसके फल स्वरूप रत्न में अवर्णनीय उपकार हुए त्याग प्रत्याख्यान स्कंध तपश्चर्या बहुत हुई ।

इस मुवाधिक चातुर्मास बहुत शांतिपूर्वक व्यतीत हुआ । वेदनीय कर्म की प्रबलता से कार्तिक शुक्ला १० के रोज पूज्य के पांच में एकाएक दर्द जोर बढ़ गया, इसलिये मगसर वद के रोज पूज्य श्री विहार न कर सके । जिससे श्रीजी के दिल ऐसा विचार हुआ कि, मेरा शरीर पग की व्याधि के कारण विकरने में असमर्थ है इसलिये सम्प्रदाय के संख्यावद्ध संतों की भाल जैसी चाहिये वैसी नहीं हो सकेगी और एक आचार्य उनकी संभाल से शुद्ध संयम पलाने की पूरी आवश्यकता है ।

परम श्री स्वचन्द्रजी महाराज के नेत्राग्र के मन्त्रों की सुश्रुति की रीतिज्ञान की महाराज की रहे ।

४ । पुनः श्री चौथमन्त्रजी महाराज साहिब के परिवार मन्त्रों की सुश्रुति भी स्वचन्द्रजी महाराज की रहे ।

(५) स्वामीजी भी राजमन्त्रजी महाराज के शिष्य नामो रामजी महाराज के परिवार में जगदीश्वरजी मार सम्भ कर ।

ऊपर प्रमाणों गण पाच की सुश्रुति अप्रेमरी मुनिराजों की है सो अपने २ मन्त्रों की मार सम्भाल व उनका निभाव करते रहें ।

यह ठहराव पूज्य महाराज श्री के सामने उनकी राय सुना हुआ है सो सब सच मजूर कर के इस मुताबिक बर्ताव करें ।

उपरोक्त ठहराव सुन कर श्री सब में हर्षोत्साह की आवृत्ति हुई थी । उस समय गन्ताम में मुनिराज ठाणा २५ व आर्याजी ठाणा ६० के करीब विराजमान थे ।

इस चानुमास में श्रे० मूर्तिपूजक जैनों के अप्रेमर सुप्रसिद्ध साहिब सेठ केमरीसिद्धजी कोटावाजा भी श्रीजी की सेवा में ज्वार वक्त आये थे और वार्तालाप के परिणाम स्वरूप अत्यंत आ

जलकृते की गाम कापेस में लाया लाजपतिराय ने अ
की हैसियत से जिन शब्दों की गर्जना की भी उन शब्दों का र
रगु यहां हो जाता है " आप अपनी आत्मा में दृढ़ भ्रष्टा र
अपने हृदय में किनना ज्वलन हो रहा है इसके ऊपर कितने अप्रे
मलिदान होने को तैयार हैं, आम लोगों में से कायरता कितने अं
में भगी है । शुद्ध भाव से अप्रेसर होने और शुद्ध भाव से दौड़
वाले अप्रेसरों के पीछे चलने की शक्ति अपने में कितने अंश त
आई है उन सब बातों पर अपनी विजय का आधार है ।"

जावरा की यह बात जो कि थिलकुल छोटी थी तो भी छो
छोटी बातों से आत्मश्रद्धा की सीढ़ियां चढ़ने लगे तो मौका अ
पर परमात्मा के संदेश को भी भेल सकेंगे । एक विद्वान् का क
है कि—आत्मश्रद्धा द्वारा ही मनुष्य प्रत्येक कठिनाई जीत स
है । आत्मश्रद्धा ही रंक मनुष्य का महान् मित्र और उसकी स
त्तम सम्पत्ति है । पाई की भी विना सम्पत्ति वाले आत्मश्रद्धा
मनुष्य महान् से महान् कार्य कर सकते हैं । और विना आ
श्रद्धा के करोड़ों की पूंजी भी निष्फल गई है ।

पूज्य श्री जावरे में विराजते थे उस समय श्री देवीलाल
महाराज भी जावरे पधारे और श्रीजी महाराज से मंदसोर पधा
का आग्रह किया, परन्तु उनके अमुक कौल करार को पकड़

से परिचित दिया गया, परन्तु भी के अतिरिक्त गाँवों के अमर
 लोगों ने जीतदिया न करने तथा शिकार न करने की प्रति
 पत्ति तत्काल ही दस्तावेज भी महाजन भी नहीं ले कर भी
 महाजनों ने भी देर करने से अधिक त्याग न होने का द
 नों लिख दिया ।

पञ्चा ' ग्नाक ' नामके एक माम को बग़ार में श्रीगु
 लाजजी कांठरिया, श्रीगु केमरीमनजी रांठा इत्यादि २०
 गाँव और वहाँ के जमीनदारों के हस्त में श्रीमान् पूज्य महा
 उपदेश का अमर पहुँचा ऐसा ठहराव किया कि मौजे 'स्ता
 पटेल, नम्बरदार, ठाकुर, पन्ना, दत्ता, धीगा, इत्यादि तीन शि
 में से एक शिकार आद आलाद (पीढी दर पीढी) तक न चढ़ें,
 ग्नाक के ताबे में शामगढ़, लुलवा इत्यादि करीब १०० गाँव ।
 सय में । इसी अनुषार ठहराव हुआ उसके बदले में एक
 (चबूतरा) बंधा देने तथा अफीम, तम्बाकू, ठंडाई एक दिन के
 देने श्री बाबत महाजनों ने स्वीकार किया और परस्पर दस्तावेज
 सही दी ली गई ।

* सं० १९७६ में श्रीमान् आचार्य महाराज शंपकाल
 वर में पधारे थे, तब शिकार की निगरानी के लिये आहेंड के
 दिन पहिले महाजनों में से करीब ४०-५० स्वयंसेवक गृ

मारवाड़ में उपकारी विहार



ठगानर से पूज्य श्री अजमेर पधारे और गुजानगढ़ की ।
 भीकानेर के भावक पोगरमलजी कि जो हजारों रुपयों की ।
 ---रति त्याग प्रपल वैराग्यपूर्वक पूज्य श्री के पास दीक्षित
 ले थे, उन्हें दीक्षा देने के लिये उभर पूज्यश्री जल्द पधारने ।
 परन्तु श्रीमान् जैनाचार्य श्री रत्नचंद्रजी महाराजकी सम्प्र
 आचार्य श्री विनयचंद्रजी महाराज का स्वर्गवास होगया
 की जगह आचार्य स्थापित करने थे, इसलिये श्रीमान् पां
 । श्री चन्दनमलजी महाराज ने यह कार्य श्रीमान् की सहा
 से सफल करनेकी अर्ज की, इसलिये श्रीजी महाराज अ
 और हजारों मनुष्यों की भीड़ में श्रीमान् शोभाचंदजी महा
 विधिपूर्वक आचार्य पदारूढ करने की क्रिया में उपस्थित
 विविध संघमें अपूर्व आनंद मंगल वरताया । दोनों सम्प्रदाय
 दुश्मों में परस्पर इतना अधिक प्रेमभाव देखा जाता कि
 १२५५-१२५६, आनंद से उभराये विना न रहता । इस
 दिन पहिले, महाजनों में से करीब ४०-५० स्वयंसेवक ।

का मकान उतरने के वास्ते दिया, जो वे मकान नहीं देते तो वे उतरते ? उन साधुओं के बाप दादों ने भी वैसा मकान न दे होगा ' ऐसी २ अनेक बातें रात के छः बजे से साढ़े आठ तक होती रहीं और साध्वीजी तथा श्रावक सब उसे सुनते । वे सब बातें लिखी जायँ तो एक छोटीसी पुस्तक बन जाय । मैंने खेत्तप में लिखी हैं । फिर मैं तो उन सबको बातें करता अपने मकान पर जा सोया । तत्पश्चात् ता० १४ के शेराम्पदाय के साधु मुंवासर आय । मालचन्दजी तथा मालचन्दजी जो बातें कहीं थीं वे सचची हैं या झूठी, उसके परीक्षार्थ मैं गोपानी में उनके साथ रहा और देखा तो गोचरी में कोई किसी प्रकार ज्वरदस्ती नहीं करते । दोषीले आहार पानी न लेते । परिचय ज्ञात हुआ कि मालचन्दजी इत्यादि की सब बातें मिथ्या हैं । साधुओं को लोग स्थान २ पर आकर प्रश्न पूछते थे और वे को यथार्थ उत्तर भी दे देते थे, परंतु गोचरी के समय कई राह में उन्हें रोकते तो वे कहते कि अभी मौका नहीं है ।

अब मेरे दिल में जो विचार उत्पन्न हुए, उन्हें जाहिर करता सब तेरहपंथी भाइयों से प्रार्थना करता हूँ कि इस तरह कदा करना, साधुओं को मिथ्या कलंक देना, उन्हें उतरने के लिये मन न देना, लड़ाई मगड़े करना, चातुर्मास न करने देना, ये भले प्रमियों के काम नहीं हैं । अपने तेरहपंथी के साधुओं को तो वा

जौहरी नवरत्नमलजी ने प्राप्त किया था। वे स्वतः तथा उनके जौहरी मुन्नीलालजी इत्यादि व्याख्यान पूर्ण होते ही दरवाजे खड़े रहते और सहमानों को हाथजोड़ अपना मकान पवित्र वास्ते अर्ज करते तथा खड़े रह कर सबको आग्रह से जिमाते रतलाम में शुवराज पदवी के उत्सव पर जयपुर से खास जौहरी मुन्नीलालजी रतलाम पधारे थे और अपने प्रांत की ओर से इस वाचत हार्दिक अनुमोदन दिया था।

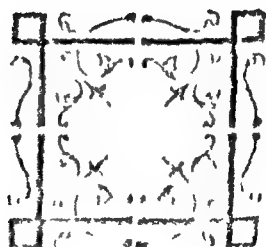
मोरवी चातुर्मास के समय स्वागत का कुल खर्च देने के सेठ सुखलाल मोनजी अपने स्नेहियों के साथ जयपुर आये थे। प्रीतिभोजन दे स्वधर्मियों से भेट करने का अवसर प्राप्त किया था।

जयपुर चातुर्मास में देश परदेश के कई श्रावक जयपुर में से धर्म का बड़ा उद्योत हुआ था। जागीरदार और अमलदार तथा बहादुर डाक्टर दुर्जनसिंहजी इत्यादि ज्ञानचर्चा के लिए पूजे के पास आये और उनके मनका सरल रीति से समाधान हो पर अपने दूसरे मित्रों को भी साथ लाते थे।

जयपुर चार्तुमास पूर्ण होने पर पूज्य श्री टोंक पधारे, उस टोंक की ओसवाल जाति में कुसम्प था। ज्ञाति में दो तढ़ें होगी परन्तु पूज्य श्री के सदुपदेश से कुसम्प दूर हो पूर्ण एकता होगई

टोंक से क्रमशः विहार कर पूज्य श्री रामपुरा पधारे और १९७४ के फाल्गुन शुक्र ३ के रोज संजीत वाले भाई नंदराम पूज्य श्री के पाम रामपुरा मुकाम पर दीक्षा ली।

और सेठानी के दृष्टांत का लोगों पर पूर्ण प्रभाव पड़ा।
 'शत स्वन्या' में कितनी ही बाइबो के शिरपर दारुम
 था वह पूज्य श्री के वहां पधारने पर उनके उपदेश में प
 गया था ।



(३७८)

पयोग करते थे । संवत्सरी के दिन बाबाजी सूरतसिंहजी साहिब
पूज्य श्रीजी से अर्ज की कि आज बड़ा भारी संवत्सरी का दिन
और बाई, भाई वृहत् संख्या में व्याख्यान में इकट्ठे होंगे,
मनुष्य के लार एक २ बकरा अभयदान पावे तो धैकड़ों को
दान मिलेगा । इन पुण्यात्मा पुरुष की हितसलाह उदयपुर में
श्राविकाओं ने तत्काल स्वीकृत की और प्रायः दो, दारू
बकरों को अभयदान देने का प्रबंध किया । बाबाजी साहिब
स्वर्ग सिधार गए हैं । पास के पृष्ठ पर आपका चित्र दिया
वेदला के रावजी साहिब श्रीमान् नाहरसिंहजी साहिब भी
के दर्शनार्थ पधारे थे ।

उदयपुर के नामदार श्री कुँवरजी बाबजी श्री श्री
भूपालसिंहजी साहिब जो पूज्य श्री की अपूर्वता से पूर्ण
सन्तोंने पूज्य श्री का दर्शन व उपदेश सुनने की ईच्छा दर्श
१६७५ श्रावण सुदी ८ के रोज सज्जननिवास बाग के
महल में (जिसकी पूज्य श्री ने चातुर्मास पहले ही रिया
आज्ञा लेली थी) समागम हुआ । दूर से देखते ही श्रीमान्
कुमार साहिब पग में से बूट निकाल पूज्य श्री के समीप
नमस्कार कर महाराज के सन्मुख बैठ गए । उस समय उन
कितनेक राजकीय गृहस्थ भी थे । उस समय पूज्य श्री ने
विशेष उपदेश देते हुए कहा कि:—

